शोधादर्श

58

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उत्तर प्रदेश, लखनऊ

भ० महावीर स्वामी

श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, श्री महावीर जी

आद्य सम्पादक	:	(स्व.) डॉ. ज्योति प्रसाद जैन
पूर्व प्रधान सम्पादक	:	(स्व.) श्री अजित प्रसाद जैन
सलाहकार	:	डॉ. शशि कान्त
सम्पादक	:	श्री रमा कान्त जैन
सह–सम्पादक	:	श्री नलिन कान्त जैन
		श्री सन्दीप कान्त जैन
		श्री अंशु जैन 'अमर'

प्रकाशक :

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ. प्र.

ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ- २२६ ००४

णाणं णरस्स सारं- सच्चं लोयम्मि सारभूयं

शोधादर्श -५८

वीर निर्वाण संवत् २५३२ **मार्च २००६ ई.**

विषय क्रम

१.	गुरुगुण-कीर्तन : श्री गणेश प्रसाद वर्णी	श्री रमा कान्त जैन	१
२.	सम्पादकीय : इस शती का गोम्मटेश बाहुबलि का प्रथम महामस्तकाभिषेक	श्री रमा कान्त जैन	६
३.	सामयिक परिदृश्य : क्षणिका	श्री रमा कान्त जैन	१०
४.	Lord Gommatesvara of Sravanabelgola : Place and Date	डॉ. ज्योति प्रसाद जैन	११
५.	अपनी परम्पराओं को न भूलें	श्री अजित प्रसाद जैन	१६
६.	लौकिक और पारलौकिक ज्ञान	डॉ. शशि कान्त	१६
७.	जैन साहित्य में संगीत	डॉ. मीना अग्रवाल	२१
८.	पालि-प्राकृत मुक्तक काव्य का समीक्षात्मक अध्ययन	डॉ. रजनीश शुक्ल	२६
९.	चिन्तन-कण :		
	(क) दिगम्बरत्व की मर्यादायें : एक चिन्तन	श्री मनोहरलाल मारवडकर	३१
	(ख) दिगम्बरत्व की मर्यादा वर्तमान परिप्रेक्ष्य में	सुश्री लीना विनायकिया	३२
	(ग) वर्तमान परिस्थितियों में साधु का नग्न रहना उचित या अनुचित	डॉ. अनिल कुमार जैन	३३
१०.	गोम्मटेश की स्थापना कथा	पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री	३६

११. गोम्मट मस्तकाभिषेक	श्री अंशु जैन 'अमर'	३६
१२. गोम्मेटश्वर बाहुबली और गोम्मटेस थुदि : एक अनुशीलन	डॉ. भागचन्द जैन 'भागेन्दु'	५३
१३. गोम्मटेस थुदि	नेमिचन्द्राचार्य	५७
१४. गोम्मटेस थुदि का हिन्दी पद्यानुवाद	श्री शिवविश्वकर्ता 'प्रशान्त'	५६
१५. बाहुबलि स्तवन	श्री कल्याण कुमार 'शशि'	५६
१६. स्वयं पंचपरमेष्ठी	श्री मनोहर मारवडकर	६०
१७. नव वर्ष की बधाई	डॉ. परमानन्द जड़िया	६१
१८. प्राणि मात्र से प्रेम हो	श्री दयानन्द जड़िया 'अबोध'	६१
१६. ऐसा कहीं बसन्त नहीं है	डॉ. महावीर प्रसाद 'प्रशान्त'	६२
२०. स्वास्थ्य-चर्चा : हृदय रोग का उपचार	साहू शैलेन्द्र कुमार जैन	६३
२१. **समाचार विमर्श :** बूचड़खानों में बूढ़े बैल-सांड काटे जाने पर प्रतिबन्ध-उच्चतम न्यायालय का निर्णय	श्री रमा कान्त जैन	६४
२२. **समाचार विविधा**		६५
२३. **साहित्य-सत्कार :** प्रवचनसार प्राभृत; तथा सयुत्तनिकायपालिः एक अध्ययन	डॉ. शशि कान्त	६७
रक्षाबन्धन और दीपावली; जैन धर्म विज्ञान की कसौटी पर? या विज्ञान जैन धर्म की कसौटी पर?; तथा प्रतिबोध। अमृत वाणी; रत्नकरण्डश्रावकाचार का हिन्दी अनुवाद समाधितन्त्र का हिन्दी अनुवाद; नींव का पत्थर' सम्यक्-अर्चना; सिद्धलोक एवं सिद्धत्व साधना के सूत्र; जिनेन्द्र पूजांजलि; श्रावकाचार : दिशा और दृष्टि; श्री जिनतारण त्रिवेणी और छद्मस्थ वाणी-सार; The Basic Thought of Bhagvan Mahavir; आलाप पद्धति; प्रेरक बोधकथाएं; अंतः पुकार; विद्रोही की आत्मकथा; तथा विधि मार्गप्रपा।	श्री अंशु जैन 'अमर	६८
	श्री रमा कान्त जैन	६६
२४. अभिनन्दन		७५
२५. शोक संवेदन		७८
२६. भूल सुधार		७८
२७. आभार		७६
२८. पाठकों के पत्र		८०
२६. चित्र (१) भ. महावीर स्वामी		कवर पृष्ठ २
चित्र (२) गोम्मटेश्वर बाहुबली		कवर पृष्ठ ३

गुरुगुण-कीर्तन

श्री गणेश प्रसाद वर्णी

शास्त्राम्भोधिवगाहनोत्थितलसत्सद्बोधभानूद्भव-
द्दिव्यालोकविलोकितावनितलाः सत्कीर्तिकेलीकलाः।
पापातापहरा महागुणधराः कारुण्यपूराकरा
जीयासुर्जगतीतले गुरुवराः श्रीमद्गणेशाश्चिरम्।।

- डॉ. पन्नालाल साहित्याचार्य

विलसित हृदि सूरिः कुन्दकुन्दोऽपि यस्य,
अमृतशशिमहर्षेस्तत्त्वदर्शी च विज्ञः।
शम-दम-मणिमाला यस्य कण्ठे विभाति,
चिरतरमतिजीयाच्-श्रीगणेशः स वर्णी।।

-श्री ठाकुरदास जैन शास्त्री

तपोमूर्ति-र्वर्णी सुकृत-हृदयः पूज्य-चरणः,
शमाऽहिंसादीनामनितर-समाराधन-परः।
महान्न्यायाचार्यो गुण-गण-समृद्धो गुरु-गुरुः,
गणेशो वर्णी मे शत-शत-गुणेशो विजयताम्।।

- श्री गोपीलाल अमर

सर्वेषु सत्वेषु यदीयमैत्र्यं, प्रमोदभावेन सहैव वर्तते।
विद्वत्सु विश्वेष्वितरेषु माध्यं, जीव्याच्चिरं वर्णिगणेश एषः।।

- पं. कमलकुमार जैन

'श्री गणेशप्रसाद वर्णी स्मृति ग्रन्थ' से ऊपर उद्धृत संस्कृत काव्यांशों में जिन गुरुवर तपोमूर्ति गणेश वर्णी का सादर स्मरण किया गया है उनके प्रत्यक्ष दर्शनों से वंचित रहते हुए भी उनका नाम मेरे कर्ण-कुहुरों में किशोरावस्था से ही पड़ता रहा। पिताजी डॉ. ज्योति प्रसाद जी से मिलने आने वाले विद्वद्वर्य पं. कैलाशचंद्र शास्त्री और प्रो. खुशालचन्द्र गोरावाला वार्तालाप के दौरान जब-तब वर्णी जी की चर्चा उनसे करते रहते थे। ७ मार्च, १९५१ ई. को प्रो. खुशालचन्द्र जी ने पिताजी को **'वर्णी-अभिनन्दन-ग्रंथ'** भेंट किया था। श्री वर्णी हीरक जयन्ती महोत्सव समिति, सागर, द्वारा आश्विन २४७६ वी.नि. को प्रकाशित इस महाकाय ग्रंथ का सम्पादन प्रो. गोरावाला ने ही किया था

और उसमें पिताजी का शोध आलेख 'स्वामी समन्तभद्र का समय और इतिहास' समाहित था। उस किशोरावस्था में इस ग्रंथ को पढ़ने-समझने की बुद्धि तो मुझे नहीं थी, किन्तु उसमें पृ. ६० पर स्याद्वाद विद्यालय काशी के विद्यार्थी नरेन्द्र की रचना 'इनको गणेश हम कैसे कहें' तब भी मन को भायी थी। तदनन्तर १२.२.७५ को पिताजी के पास सन् १९७४ ई. में श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद् द्वारा वर्णी जी की जन्मशती पर प्रकाशित तथा डॉ. पन्नालाल जी साहित्याचार्य एवं श्री नीरज जैन द्वारा सम्पादित **'श्री गणेश प्रसाद वर्णी स्मृति-ग्रन्थ'** आया। उसमें भी पिताजी का लेख 'युग पुरुष वर्णी जी' समाहित रहा। किन्तु उस समय भी अन्य व्यस्तताओं के चलते उस ग्रन्थ को पढ़ने का अवकाश नहीं निकाल सका। मेरे घर मुजफ्फरनगर से प्रकाशित मासिक पत्रिका **'वर्णी प्रवचन'** आती रही है और उसमें जब-तब वर्णी जी की जीवन गाथा के कुछ प्रसंग पढ़ने में आये। किसी अन्य प्रसंग में जब **'जैन जागरण के अग्रदूत'** पुस्तक देख रहा था कि उसमें समाहित श्री अयोध्या प्रसाद गोयलीय द्वारा सन् १९५१ ई. में उकेरे गये शब्द चित्र पर दृष्टि जा पड़ी। उसके अनुसार श्री गणेश प्रसाद वर्णी जी एक ऐसे व्यक्ति थे जो तप से कृश, तेज से दीप्त, सांवला रंग, स्वच्छ हृदय, पण्डितों के पण्डित, बालकों जैसे सरल स्वभावी, उन्नत ललाट, अन्तरंग को देखने में लीन अधखुले से नेत्र, कीर्ति-प्रतिष्ठा से निर्लिप्त, वर्षों नंगे पाँव एक लंगोटी लगाये चादर ओढ़े सर्दी-गर्मी की चिन्ता किये बिना ही गाँव-गाँव और शहर-शहर में जन-जन को अहिंसा-सत्य का उपदेश देते हुए घूमते रहे। वह चलते तो धनकुबेर उनके पाँवों में लक्ष्मी बिखेरते चलते और विद्वद्वर्ग अपनी सीमाओं में ही रोक रखना चाहते, पर वह निर्विकार अपनी डगर पर बढ़ते रहे।

इस चित्रण ने वर्णी जी के विषय में और जानने की उत्सुकता मन में जगायी और मैं 'वर्णी-अभिनन्दन ग्रन्थ' और उनके स्मृति ग्रन्थ के पन्ने पलटने लगा तथा १९वीं-२०वीं शती ई. में हुए इस विलक्षण व्यक्तित्व के धनी के प्रति मुग्ध होता चला गया।

विक्रम संवत्-१९३१ (१८७४ ई.) की आश्विन कृष्ण ४ को उत्तर प्रदेश के ललितपुर जिले की महरौनी तहसील के अन्तर्गत हँसेरा ग्राम में वैष्णव धर्मावलम्बी असाटी वैश्य जाति के मध्यम वित्तीय परिवार में जन्मे और ४ सितम्बर, १९६१ ई. को ईसरी बाजार (वर्तमान में झारखंड राज्यान्तर्गत) के दिगम्बर जैन शान्ति निकेतन में आध्यात्मिक जैन सन्त के रूप में लगभग ८७ वर्ष की वय में दिवंगत हुए गणेशप्रसाद वर्णी जी का जीवन अनेक उतार-चढ़ाव से युक्त विविध दृष्टियों से बहुरंगी रहा। एक सामान्य से अति असामान्य युग-पुरुष के रूप में उभरे गणेश प्रसाद जी

के पिताजी का नाम हीरालाल और माताजी का उजियारी था। यद्यपि उनके पिताजी को णमोकार मन्त्र पर श्रद्धान था, उनकी माताजी अपनी कुल परम्परा से आबद्ध कट्टर वैष्णव थी और अपनी सन्तति को भी वैष्णव ही देखना चाहती थी। जब गणेश प्रसाद जी छह वर्ष के बालक थे उनका परिवार मड़ावरा आकर बस गया। वहीं उनकी शिक्षा का श्री गणेश हुआ और चौदह वर्ष की वय में हिन्दी मिडिल परीक्षा उत्तीर्ण की। मड़ावरा में दो वैष्णव और ११ जैन मन्दिर थे। मड़ावरा में रहते हुए गणेश प्रसाद जी जहाँ प्रतिदिन संध्या समय अपने गुरुजी के साथ वैष्णव मन्दिर (शाला) में आरती देखने, रामायण सुनने तथा प्रसाद लेने जाते थे, वहीं घर के सामने स्थित जैन मन्दिर में होने वाली शास्त्र-सभा में अपने पिताजी के साथ जाने का सुअवसर भी उन्हें प्राप्त रहा। जैन मन्दिर के वातावरण और मड़ावरा की जैन समाज के आचार-विचार ने बालक गणेशप्रसाद को ऐसा प्रभावित किया कि दस वर्ष की वय में रात्रि भोजन का त्याग करने का नियम ले बैठे। एक रात शाला में बटे प्रसाद के पेड़े लेने से इंकार कर गुरुजी को कुपित कर दिया। बारह वर्ष की उम्र में उनका यज्ञोपवीत हुआ। उस समय कुल पुरोहित से उनकी किसी बात पर झड़प हो गई। उनकी माता जी उन पर कुपित हुई। विद्रोही किशोर ने ऐलान कर दिया, "अब मोय ई धर्म में नईं रैने। आज से जिनेन्द्र को छोड़कर दूसरे को नईं मानूंगो।"

अठारहवें वर्ष में उनका विवाह कर दिया गया। पत्नी भी परम वैष्णव थी। दुर्भाग्य से उस वर्ष अनेक पारिवारिक आपदाएं उन पर टूट पड़ी। पहले विवाहित बड़े भाई की मृत्यु हुई, तदनन्तर पिता को सन्निपात। उसे देखकर ११० वर्षीय पितामह ने इच्छामरण किया और अगले दिन पिता भी चल बसे। विधवा जीवितमृत युवती भाभी और विलखती वृद्धा माता ने उन्हें उस अल्पवय में संसार की क्षणभंगुरता का एहसास करा दिया। साथ ही परिवार के भरणपोषण का दायित्व उनके कन्धों पर आ पड़ा। उसे निभाने हेतु मदनपुर के स्कूल में मास्टरी प्रारम्भ की, किन्तु प्रशिक्षित न होने के कारण आगरा ट्रेनिंग लेने जाना पड़ा। किसी मित्र के साथ जयपुर गये और वहाँ से इन्दौर पहुँचे और वहाँ शिक्षा विभाग में नौकरी कर ली, किन्तु अधिक दिन नहीं टिके, घर लौट आये। जब पत्नी का द्विरागमन हुआ आजीविका हेतु कारीटोरन ग्राम के स्कूल में अध्यापकी करने लगे।

कुछ समय बाद चचेरे छोटे भाई के विवाह में जैनियों जैसा भोजन न होने के कारण पंगत में जीमने से इंकार कर दिया। जाति वाले आग बबूला हो गये और उन्हें जाति से निकालने की धमकी दे दी। उनकी माताजी और पत्नी ने उन्हें समझाने की बहुत कोशिश की, पर वह नहीं माने। "आप सब जनों की बात मंजूर है, मैं अपने

आप अलग भओ जात" कहकर घर से निकल पड़े। और जतारा के स्कूल में नौकरी करने लगे। वहाँ रहते हुए उनके मन में जैन धर्म का रहस्य जानने की अभिलाषा बढ़ी। संयोग से समीपवर्ती गाँव सिमरा जाना पड़ा। वहाँ सम्पन्न जैन धर्मानुयायी विधवा सिंधैन चिरोंजाबाई से उनकी भेंट क्या हुई, लगा चिरोंजाबाई को जन्मान्तर का बिछुड़ा हुआ पुत्र और गणेश प्रसाद जी को जन्मान्तर की बिछुड़ी माँ मिल गई । उन्होंने उन्हें अपनी सगी माँ से अधिक मान-सम्मान दिया। गणेश प्रसाद जी की जैनधर्म के सम्बन्ध में ज्ञानपिपासा को शान्त करने का पथ प्रशस्त हो गया। उन्हें संरक्षक प्राप्त हो गया।

एक बार खुरई के जिनमन्दिर की शास्त्र सभा में कुछ बोलने को उद्यत हुए तब वहाँ किसी के द्वारा दिये गये व्यंग्यपूर्ण उलाहने ने उनको ऐसा मर्माहत किया कि उन्होंने जैन शास्त्रों के सम्यक् अध्ययन करने का प्रण कर लिया। इस हेतु अनेक स्थान गये। मुम्बई में पं. जीवाराम से **कातन्त्र व्याकरण** तथा पं. पन्नालाल बाकलीवाल से **रत्नकरण्ड श्रावकाचार** का अध्ययन किया। उन दिनों कापियां बेचना उनकी आजीविका का साधन था। संयोग से माणिकचन्द्र दिगम्बर जैन परीक्षालय की परीक्षा में ससम्मान उत्तीर्ण होने पर पं. गोपालदास बरैया ने उन्हें छात्रवृत्ति दिलवा कर जयपुर भेज दिया जहाँ उन्होंने **सर्वार्थसिद्धि** आदि ग्रन्थों का अध्ययन किया। खुरजा में रहकर उन्होंने गवर्नमेन्ट संस्कृत कालेज वाराणसी की प्रथमा तथा न्याय मध्यमा परीक्षा का प्रथम खण्ड उत्तीर्ण किया और काशी में पं. अम्बादास शास्त्री से न्याय शास्त्र का अग्रतर अध्ययन किया और अन्ततः जैन दर्शन के प्रकाण्ड पण्डित 'न्यायाचार्य' बन गये।

काशी में पं. जीवनाथ मिश्र द्वारा ब्राह्मण न होने के कारण उन्हें पढ़ाने के लिये इन्कार कर दिये जाने पर उनके चित्त को ऐसी चोट पहुँची कि उन्होंने वहाँ जैन शिक्षण संस्था की स्थापना का संकल्प ले लिया। और उनके प्रयत्नों से वाराणसी में स्याद्वाद विद्यालय की नींव पड़ी। उस विद्यालय में आदि-अध्यापक उपर्युक्त पं. अम्बादास शास्त्री जी तथा आदि छात्र स्वयं गणेश प्रसादजी, पं. बंशीधरजी (इन्दौर) और पं. गोविन्दराय जी के साथ रहे। आज उक्त विद्यालय ऐसे महाविद्यालय के रूप में विद्यमान है जिसे विगत लगभग एक शती में समाज को सैकड़ों प्रकाण्ड पण्डित प्रदान करने का श्रेय रहा है। अध्ययनोपरान्त जब अपनी जन्मभूमि बुन्देलखण्ड क्षेत्र वापस आये तो वहाँ सामान्य शिक्षा की अवनत अवस्था और रूढ़िग्रस्त समाज की स्थिति ने उनके मन को कचोटा। उन्होंने वहाँ शिक्षा-प्रचार, पाठशालाओं की स्थापना और समाज-सुधार का बीड़ा उठाया। उनके प्रयत्न से सागर में 'सतर्क सुधारतरंगिणी

पाठशाला' की स्थापना हुई जो अब 'गणेश दिगम्बर जैन संस्कृत विद्यालय' के नाम से विख्यात है। उनकी प्रेरणा से बरुआसागर, शाहपुर, द्रोणगिरि, ललितपुर, इटावा, खतौली प्रभृति स्थानों पर विद्यालय तथा खुरई एवं जबलपुर में गुरुकुल खुले। समाज में व्याप्त रूढ़ियों और कुरीतियों के विरुद्ध जनजागरण हेतु गाँव-गाँव पदातिक भ्रमण किया। स्थानीय समाज के पारस्परिक झगड़ों और विवादों को सुलझाने में भी कई बार अहम भूमिका निभाई।

हिन्दी मिडिल परीक्षा उत्तीर्ण करने के अनन्तर पारिवारिक दायित्वों के निर्वहन हेतु आजीविका के लिये अध्यापकी अपनाने वाले गणेशप्रसाद जी को आगे चलकर गूढ़ जैन ग्रन्थों को पढ़ाने तथा समाज में विगत शती में हुए अनेक विश्रुत विद्वानों का गुरु बनने का श्रेय भी रहा। अपने शिष्यों के प्रति गुरु गणेशप्रसाद जी का व्यवहार कैसा स्नेहपूर्ण था, वह अपने शिष्यों को आगे बढ़ाने में, उन्हें प्रोत्साहन देने में कितना तत्पर रहते थे, इसकी झलक हमें उनके अनेक शिष्यों के संस्मरणों में मिलती है। पं. दरबारीलाल सत्यभक्त (स्वामी सत्यभक्त, वर्धा) सन् १९११ ई. से सन् १९१६ ई. तक सागर की पाठशाला में अध्ययनरत रहे थे। वहाँ गणेशप्रसाद जी बड़े पंडितजी के नाम से जाने जाते थे। एक बार दरबारीलाल जी ने अपने एक साथी से झगड़ा हो जाने पर उसके विरुद्ध कुछ दोहे बनाकर प्रचारित किये। उस साथी ने अध्यापक से शिकायत की। अध्यापक ने दरबारीलाल जी का जवाब तलब किया और सन्तुष्ट न होने पर बड़े पंडितजी से बात कही। पर बड़े पंडितजी ने न उन्हें बुलाया, न डाँटा-फटकारा। अगले दिन सामने पड़ जाने पर बिना किसी प्रकार की भूमिका बांधे बोले, "दरबारी! तुम कविता तो अच्छी करते हो भैया! यदि तुम भगवान की प्रार्थना बनाने में अपनी शक्ति आजमाओ तो मुझे बहुत प्रसन्नता हो।" बड़े पंडितजी के इस मनोचिकित्सक व्यवहार ने बालक दरबारी पर अद्‌भुत प्रभाव डाला और उसने प्रयास कर शाम तक दो प्रार्थनाएं बना डाली। पंडित जी ने दरबारी को शाबासी दी और उसकी रचनाएं पाठशाला में प्रार्थना रूप में पढ़ी जाने लगी। दरबारीलाल जी को भाषण देने के लिये भी उन्होंने प्रेरित किया। वह अपने शिष्यों को लेकर मैदान में उनके साथ खिलाड़ी की तरह खेलते भी थे।

प्रवचन कुशल वर्णी जी बुन्देलखण्डी मिश्रित खड़ी बोली में विविध दृष्टान्तों द्वारा अपनी बात समझाते श्रोताओं के हृदय में उतर जाते थे। वह लेखनी के भी धनी थे। अपनी डायरी में वह मात्र घटनाओं का विवरण ही नहीं लिखते थे, अपितु उनकी सार्थक मीमांसा भी करते थे। **'वर्णी वाणी'** नाम से उनकी डायरी का चार भागों में

संकलन-प्रकाशन हुआ। **'मेरी जीवन गाथा'** नाम से आत्मकथा और **समयसार** पर प्रवचनात्मक टीका भी उन्होंने रची।

निर्भयता, निस्संगता, सरलता, स्वाभिमान, परदुखकातरता, उदारता और परोपकार गणेशप्रसाद जी की रग-रग में समाये थे। स्याद्वाद विद्यालय के विद्यार्थी रहते एक बार वह बिना अधिष्ठाता ब्र. उमराव सिंह से अनुमति लिये रामनगर की रामलीला देखने चले गये। लौटने पर फटकार पड़ी। जवानी के जोश में गणेशप्रसाद जी भी कुछ कह गये। फलतः कठोर अनुशासक बाबाजी ने उन्हें विद्यालय से पृथक् कर दिया। किन्तु विदायी सभा में उनके द्वारा व्यक्त पश्चाताप एवं दृढ़तापूर्ण भाषण ने स्थिति पलट दी। अपने आदर्श और लोकशक्ति का विचार कर ब्रह्मचारी जी ने ही अधिष्ठाता पद त्याग दिया।

जिस समय **कातन्त्र व्याकरण** की परीक्षा दे रहे थे पत्नी की मृत्यु का समाचार मिला। उन्होंने निस्संग भाव से मुक्ति की साँस ली। सागर में रहते समय एक कुंजड़न के स्पष्ट व्यवहार पर मुग्ध हो उससे शाक-भाजी लेने जाने लगे। उन दिनों पहनने ओढ़ने आदि के शौकीन भी थे। उसके यहाँ ही रोज-रोज जाने पर छिद्रान्वेषी लोगों में कुछ कानाफूसी हुई। उनके कान में भी इसकी भनक पड़ी। प्रतिकार स्वरूप उन्होंने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत ले लिया।

एक बार वर्णीजी सागर से द्रोणगिरि बस से जा रहे थे। वह आगे की सीट पर बैठे थे। कुछ देर बाद किसी सरकारी अधिकारी के आ जाने पर पीछे की सीट पर बैठने को बाध्य किया गया। उन्हें सह्य नहीं हुआ। उनके स्वाभिमान को ठेस लगी। बस से उतर पड़े। सवारी मात्र का त्याग कर दिया और पैदल ही द्रोणगिरि चले गये।

हीरा जड़ित सोने की अंगूठीं पहने उन्हें उनके शिष्यों ने देखा है। पीतल के पात्र भोजन के लिये अनुपयुक्त होते हैं जानकर चाँदी के बर्तन बनवा डालने वाले भोजनानन्दी गणेशप्रसाद जी को अच्छी जानकारी थी कि कहाँ कौन उत्तम भोज्य पदार्थ होता है या बनता है। तिस पर उससे भी बढ़कर उनकी उसके प्रति उदासीनता भी रही। अधिक पैसा पास न होने पर हफ्तों कच्चे चने चबाकर रहे और कभी-कभी भूखे भी रह गये। उदर भरण के लिये उन्हें एक बार मिट्टी खोदने का काम भी करना पड़ा था। और एक बार बेतूल में ताश के पत्ते पर दाँव लगा गाँठ के तीन रुपयों से भी हाथ धोना पड़ा था।

प्रारम्भ से ही परदुखकातर, परोपकारी गणेश प्रसाद जी स्कूल में मिलने वाला वजीफा अपने निर्धन ब्राह्मण साथी तुलसीदास को दे देते थे। बनारस से सागर अपनी

धर्ममाता के लिये लेकर चले ५० लंगड़ा आमों की टोकरी रास्ते में ही छात्रों और प्लेटफार्म पर खड़े निर्धन बालकों में बाँटकर खाली कर दी थी। दीन या आक्रान्त को देखकर उन दयामूर्ति का हृदय तड़प उठता था। पात्र-अपात्र का विचार किये बिना उसकी सहायता करना उनका चरम लक्ष्य हो जाता था। अस्तु उनके जीवन-चित्र में जहाँ एक समय लुहार से सँडसी मांगकर लकड़हारिन के पैर से खजूर का काँटा निकालते हम उन्हें देखते हैं, वहीं दूसरे ही क्षण बहेरिया ग्राम के कुएँ पर दरिद्र दलित बालक को अपने लोटे से जल पिलाते और मेवा खिलाती उनकी मूर्ति दृष्टि-पथ में आ जाती है। तीसरे क्षण मार्ग में ठिठुरती स्त्री की ठंड दूर करने के लिये लंगोटी को छोड़ अपने तन से सब वस्त्र दे देने वाले त्यागी नजर आते हैं। वर्णी जी का जीवन ऐसी घटनाओं से भरपूर रहा। ये तो चन्द चित्र हैं उनके जीवन के।

वर्णी जी छुआछूत से दूर थे। कर्रापुर के कुएँ पर पानी पीकर चलने को उद्यत वर्णी जी की दृष्टि सहसा पास खड़े प्यासे मेहतर पर ठिठक गई। दया उमड़ी और कुएँ से लोटा भर कर उसे पानी पिलाया। लोकापवाद का भय मन में जागा तो लोटा उसे ही सौंप चलते बने। इस प्रकार स्थिति पालन और सुधार का अनूठा समन्वय किया। मन्दिरों में हरिजन प्रवेश के वह समर्थक रहे। कट्टरपन्थियों ने उनका विरोध भी किया, किन्तु उन्होंने परवाह नहीं की। सामयिक राष्ट्रीय भावनाओं से भी वह प्रभावित रहे।

कुछ भी तुच्छ नहीं है जगत में किसी भी महान कार्य को प्रारम्भ करने के लिये, उन्होंने जीवन में चरितार्थ कर दिखाया। जहाँ एक रुपये की प्राप्त प्राथमिक सहायता से चौंसठ पोस्टकार्ड क्रय कर उन्हें समाज के श्रेष्ठियों को भेज उन्होंने काशी के स्याद्वाद विद्यालय का बीज वपन किया, वहीं आजाद हिन्द फौज के सेनानियों के विरुद्ध चल रहे मुकदमे की पैरवी हेतु चन्दा एकत्र करने के लिये हुई जनसभा में अपनी दो चादरों में से एक चादर अर्पित कर लोगों के सामने ऐसा उदाहरण प्रस्तुत किया कि देखते-देखते काफी धनराशि एकत्र हो गई।

एक बार उन्हें कार्बंकल फोड़ा हो गया जिसका आपरेशन होना था। एनेस्थीसिया का इंजेक्शन लगाना जरूरी था, किन्तु उन्होंने मना कर दिया और बिना एनेस्थीसिया के इंजेक्शन के चुपचाप शान्त भाव से आपरेशन करा लिया। डाक्टर भी चकित रह गया। यह थी कष्ट सहने की उनमें अद्भुत क्षमता।

उज्जैन के डॉ. हरीन्द्रभूषण जी ने वर्णी जी की धर्ममाता चिरोंजाबाई जी के सागर के जैन विद्यालय में लगे चित्र की प्रतिलिपि बनाई। कलकत्ता न्यायतीर्थ की परीक्षा देने

गये तो ईसरी में उतर कर वर्णी जी से मिलने चले गये। उन्हें चित्र दिखाया तो अपलक निहारते रहे और उसे अपने पास रख लिया। जब हरीन्द्रभूषण जी कलकत्ता से लौटते हुए उनसे पुनः मिलने गये तो उन्होंने तुरन्त चित्र लौटा दिया और कहा जब तक चित्र उनके पास रहेगा बाई जी के प्रति उनका ममत्व जागृत रहेगा। यह था उनका क्षणिक व्यामोह और तत्क्षण मोहनिवृत्ति।

लगभग चालीस वर्ष की वय में आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत और लगभग ७० वर्ष की वय में बड़े ऊहापोह के साथ क्षुल्लक पद धारण कर लोकोपकार की भावना से वर्षों देश में एक स्थान से दूसरे स्थान पदातिक विचरण कर अपनी जीवन संध्या अपने ईसरी स्थित उदासीनआश्रम में व्यतीत करने वाले तथा सल्लेखनापूर्वक इहलीला समाप्त करने वाले वर्णीजी की आकांक्षा क्या मुनि बनने की रही थी, यह विचारणीय है। भले ही अन्त समय उनके चेलों ने उन्हें निर्वस्त्र कर 'मुनि गणेशकीर्ति' नाम दे दिया, किन्तु अपने अन्तस् में इसके लिये क्या वह समुत्सुक थे, कदाचित् नहीं। इसका संकेत हमें स्मृति ग्रन्थ में प्रकाशित प्रो. खुशालचंद्र गोरावाला के संस्मरण में मिलता है। अपनी मृत्यु से लगभग १८ दिन पूर्व १८ अगस्त, १९६१ को जब वह काफी रुग्ण थे उन्होंने प्रो. गोरावाला को बुलाकर और अपनी पिच्छी मंगवाकर उनसे कहा था "इसकी इच्छा मत करना"। और जब प्रो. गोरावाला, पं. कैलाशचन्द्र जी और पं. जगन्मोहनलाल जी ने उनसे अपना आजीवन करणीय जानना चाहा तब उन्होंने इतना ही कहा, "तुम तीनों जो कर रहे हो उसे ही करते जाओ। अब और कुछ नहीं बताना है। कल्याणमस्तु।" इससे प्रतीत होता है कि वर्णी जी मुनिचर्या व्यावहारिक एवं आदर्श नहीं समझते थे। उनके महाप्रयाण के उपरान्त जब उनके अस्थि और भस्म के कलशों को प्रवाहित करने की बात आई तब डॉ. नरेन्द्र विद्यार्थी के संस्मरणानुसार, एक-एक अस्थि और भस्म कलश वाराणसी में वर्णीजी के अनन्य भक्त पं. मुकुन्द शास्त्री खिस्ते के निर्देशन में दो वेदज्ञ ब्राह्मण विद्वानों द्वारा वेदोच्चारण और णमोकार मन्त्र के मंगल घोष एवं वर्णीजी की जय के साथ पुण्यतोया भागीरथी की गोद में भी विसर्जित किये गये क्योंकि वह हिन्दू वैश्य परिवार में जन्मे थे।

महामना गणेश प्रसाद वर्णी जी की पुण्य जीवन गाथा को चन्द पंक्तियों में समेटना अति दुष्कर है। उसका यात्किंचित् स्मरणकर उस अमर विभूति को श्रद्धा-सुमन अर्पित हैं।

१८.०२.२००६ **- रमा कान्त जैन**

सम्पादकीय

इस शती का गोम्मटेश बाहुबलि का प्रथम महामस्तकाभिषेक

चामुण्डराय द्वारा ९८१ ई. में श्रवणबेलगोल (कर्णाटक) में विन्ध्यगिरि पर प्रतिष्ठापित गोम्मटेश्वर बाहुबलि की विश्वविश्रुत उत्तुंग, अद्वितीय प्रतिमा का ८ फरवरी से १९ फरवरी, २००६ ई. को सम्पन्न महामस्तकाभिषेक इस वर्ष का विशेष आकर्षण रहा। अनेक त्यागीवृन्द की उपस्थिति में आसेतु हिमाचल देश के कोने-कोने से ही नहीं, विदेशों से भी लाखों की संख्या में आये श्रद्धालुओं का साक्षी बना यह महोत्सव जैन समाज और कर्णाटक राज्य की ही नहीं, भारत सरकार की प्रतिष्ठा का भी प्रश्न रहा। अस्तु इसकी तैयारियां वर्षों पूर्व से जोरशोर से प्रारम्भ हुईं और समारोह की श्रृंखला में अनेक धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक कार्यक्रम आयोजित हुए और श्रवणबेलगोल क्षेत्र का श्रीवर्धन हुआ। नवम्बर २००५ ई. में विदुषी सम्मेलन हुआ तो २८ दिसम्बर से १ जनवरी, २००६ ई. तक शताधिक विद्वानों की उपस्थिति में विद्वद् सम्मेलन और पण्डित सम्मेलन सम्पन्न हुए। २ से ४ जनवरी तक भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा के श्रुत संवर्धिनी, तीर्थ संरक्षिणी, धर्म संरक्षिणी एवं महिला महासभा के अधिवेशनों की स्थली श्रवणबेलगोल बनी और श्री निर्मल कुमार सेठी का २५ वर्ष तक निरन्तर महासभा का अध्यक्ष बने रहने हेतु अभिनन्दन किया गया। २२ जनवरी को भारत के राष्ट्रपति महामहिम डॉ. ए. पी. जे. अब्दुल कलाम ने श्रवणबेलगोल में भगवान बाहुबली के इस सहस्राब्दि के प्रथम महामस्तकाभिषेक का उद्घाटन किया और ६ फरवरी को भारत के उपराष्ट्रपति महामहिम भैरोंसिंह शेखावत ने तथा १२ फरवरी को सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश वाई. के. सब्बरवाल ने इस अनुपम कलाकृति का दर्शन कर अपने को धन्य किया। ४ फरवरी से ९ फरवरी तक भगवान आदिनाथ का पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव विभिन्न रंगारंग कार्यक्रमों के साथ सम्पन्न हुआ और एक भव्य प्रदर्शनी भी आयोजित हुई। १ फरवरी को चामुण्डराय मण्डप में आचार्य शांतिसागर स्मारक भवन का लोकार्पण हुआ। मूर्ति के इस भव्य पंचामृताभिषेक समारोह का आँखों देखा प्रसारण टी. वी. के विभिन्न चैनलों पर हुआ जिससे जो वहाँ सशरीर उपस्थित नहीं हो पाये उन्होंने भी

कार्यक्रम का घर बैठे दर्शन कर अपने को धन्य किया। इस अवधि में प्रायः सभी, विशेषकर दिगम्बर जैन समाज की, पत्र-पत्रिकाओं ने अपने नयनाभिराम विशेषांक आदि प्रकाशित कर गोमटेश बाहुबलि की इस अनुपम मूर्ति, उसके निर्माता और प्रतिष्ठापक आदि को महिमामंडित किया। हम भी इस अंक के माध्मम से अपनी विनयांजलि अर्पित कर रहे हैं। सम्पूर्ण समारोह के सफलतापूर्वक सम्पादन का श्रेय श्रवणबेलगोल के भट्टारक स्वामी श्री चारुकीर्तिजी को है।

इस महोत्सव ने जहां लाखों श्रद्धालुओं को जोड़ा, अनेक विद्वान मनीषियों का सम्मान-सत्कार कराया वहीं अनेक स्वयंभूत नेताओं को आत्म-प्रचार का भरपूर अवसर भी प्रदान किया। इस अवसर पर आयोजित विद्वद् सम्मेलन अपने उद्देश्य में कितना सार्थक सफल रहा, इसकी विवेचना में न जाकर आपका ध्यान बुरहानपुर से प्रकाशित मासिक 'पार्श्व ज्योति' के दिसम्बर २००५ के अंक में पृ. १६ पर सम्पादक डॉ. सुरेन्द्र जैन के 'घूमता आईना' और अहमदाबाद से प्रकाशित 'तीर्थंकर वाणी' के फरवरी २००६ के अंक में डॉ. शेखर चन्द्र जैन के सम्पादकीय की ओर आकृष्ट करना चाहूंगा जिनमें उन्होंने अपनी दृष्टि से विवेचन कर ऐसे आयोजनों में उपस्थित हो रही समस्या के विभिन्न पक्षों को उजागर किया है। जहाँ तक अपना अनुभव है, ऐसे विद्वद् सम्मेलनों के संयोजक विद्वान मनीषी इतने अधिक व्यस्त जीव होते हैं कि उन्हें विद्वानों से शोध-पत्र आमंत्रित करने के उपरान्त प्राप्त शोध-पत्र, जो काफी श्रम-साध्य और व्यय-साध्य होते हैं, की प्राप्ति स्वीकार करने तक का अवकाश नहीं रहता और यदि किसी कारणवश सम्मेलन में विद्वान् स्वयं नहीं उपस्थित हो पा रहा है तो दृष्टि से ओझल रहने के कारण उसकी सुधि बिसर जाती है।

१४-०३-२००६ **- रमा कान्त जैन**

सामयिक परिदृश्य

क्षणिका

कवच का कार्य करते थे 'कर्ण' के कुण्डल
कामिनी-कपोल कमनीय करते रहे कानों के कुण्डल
आस्था के केन्द्र-बिन्दु बने हैं आज जो,
समाज को बाट रहे हैं अपने दो 'कुण्डल'।।

- रमा कान्त जैन

LORD GOMMATESVARA OF SRAVANABELGOLA: PLACE AND DATE

— Dr. JYOTI PRASAD JAIN

'A statue solid set

And moulded in colossal calm.' [1]

'It is human in shape and feature, yet as inhuman as an icicle; and thus expresses perfectly the idea of successful withdrawal from the round of life and death, personal cares, individual destiny, desires, sufferings and events... Like a pillar of some superterrestrial unearthly substance... stands supernally motionless, absolutely unconcerned about worshipping jubilant crowds that throng around his feet.' [2]

'Truly Egyptian in size, and unrivalled throughout India as detached work... Nude, cut from a single mass of granite, darkened by the monsoons of centuries, the vast statue stands upright, with arms hanging straight, but not awkwardly, down the sides in a posture of somewhat stiff but simple dignity'. [3]

'It is the biggest monolithic statue in the world—larger than any of the statues of Rameses in Egypt' [4] ....'The image on the whole is a very successful piece of sculpture since the spirit of Jaina renunciation is fully brought out in it. The naked figure shows absolute renunciation while its stiff erect posture stands for perfect self-control and the benign smile on the face shows inward bliss and sympathy for the suffering world... Its merits are the sublime beauty of the face and the gigantic proportions of the colossal image.' [5]

These are some of the tributes paid by eminent historians, archaeologists and connoisseurs of art, to the Sravanabelgola colossus of Bahubali popularly known as Gommata. Carved out from a fine-grained light grey granite rock, and uninjured by weather or violence, this striking and unusual object, the image of Gommatesvara, looks as bright and clean as if just from the chisel of the artist. Standing on the top of the Vindhyagiri and visible for miles around, this fifty-seven feet tall ascetic par excellence faces North, as though with his mind's eye fixed upon the far off holy Mount Kailasa, the abode of Lord Rsabha, own father of Bahubali and the first Tirthankara. Curiously enough, the illustrious son succeeded in attaining Nirvana long before the Great Father did. In life, Bahubali, also called Bhujabali or Dorbali, was famous as having mighty and victorious arms with which he overcame his adversaries.[6] and he possessed such an extremely charming personality that he has been designated as the first of the twenty-four Kamadevas, incarnations of love and manly beauty, of the current cycle of time. Moreover, he was so great a lover of freedom, justice, honour and self-respect that he refused to submit to the authority of Bharata, the first Cakravartin, who was

also his own elder brother. Consequently, a fierce duel was fought between the two brothers. Bahubali came out victorious, but was shocked at human frailty, the mortal's insatiable greed for power and pelf when life itself is so uncertain and ephemeral. The realisation of reality turned his mind from the world which he renounced altogether.[7] He left Podanapura,[8] his capital, went to the nearby forest, took the vows of asceticism, and stood for full one year in one place, without food or drink, nay, absolutely motionless, ultimately obtaining Kaivalya and then Nirvana, being thus the first to do so in the present cycle.

It is said that Emperor Bharata had erected a life-size golden image of the saint Bahubali on the spot, outside the city of Podanapura, where he had practised penance, but which, in the course of time, had become quite invisible and untraceable,[9] It is also said that a more or less similar image was later installed by Ravana, the King of Ceylon, on the Vindhyagiri.[10] It was, however, early in the last quarter of the 10th century A. D. that Camundaraya, the illustrious general of the Ganga Kings of Mysore, caused the present Gommata statue to be sculptured by Aristanemi, a superb artist, under the guidance of his own gurus, Ajitasena Acarya and Nemicandra Siddhanta Cakravartin, in order to fulfil the pious wish of his own mother, Kalala Devi.

PLACE : The town Sravanabelgola is situated in the Chennarayapattan taluk of district Hasan in the State of Karnataka, the erstwhile princely state of Mysore, in 12° 51' N. Latitude and 76° 29' E. Longitude, is at a distance of 12 Kms. south of Chennarayapattan, 50 Kms. from Hasan and about 100 Kms. from Mysore. It nestles in a valley between two hills, that on the north being known as the Cikkabetta (small hill), also called Candragiri, Rsigiri. Tirthagiri and Gommatagiri, and that on the south being called the Dodda-betta (big hill), Vindhyagiri or Indragiri. It is on the top of the latter hill that Lord Gommatesa, standing on a full-blown lotus-seat, and facing North, commands the horizon on all sides.

The name Belgola (white lake) or Sravana Belgola, 'the white lake of the Jaina Ascetics', is also at least as old as the 6th or 7th century A.D. [11] In some records, it has been called as the Dhavala-Sarovara Nagara.[12] (the town of the white lake). The present Kalyani tank in the centre of the town is supposed to mark the site of the original 'white lake' on the banks of which numerous Jaina ascetics used to practise penance. During the last two thousand years, the two hills, the town and even the neighbourhood have been adorned with numerous temples and other religious monuments. Not all of them have survived, but of those that remain several are quite beautiful and artistic. Since the consecration of the Gommatesa here, the place certainly acquired great celebrity and became world famous. It also came to be known by such names as Gommatapura, Gommata-tirtha or the 'city of Gommatadeva'. Historical and traditional associations— association with saints, sages and ascetic yogis, with learned men, scholars and poets, with lay devotees of different classes and ranks, and with pious pilgrims from far and off places,

gave a distinct character and significance to Sravanabelgola Culture. The Bhattaraka-svamijis of the local Pitha have also, during the last one thousand years or so, contributed a lot in sustaining and maintaining this culture.

Date : The date of the setting up of this image has baffled modern scholars and opinions differ widely, ranging from 907-908 A. D. to 1028 A. D. Thus S. Srikantha Sastri fixed the date as 907-908 A.D.[13] A. Venkata Subbayya 978 A. D., [14] S. C. Ghoshal 980 A. D.,[15] M. Govind Pai [16] and N. C. Sastri 981 A. D., [17] S. R. Sharma, [18] M. H. Krishna [19] and J. L. Jaini [20] 983 A. D., A. N, Upadhye 984 A. D., [21] and Shama Sastri [22] and Hira Lai Jain 1028 A. D.[23]

We know for certain that the image was set up by Camundaraya who completed his Purana in 978 A. D. and was the minister of Ganga Marasimha II (961-974 A. D.) and Racamalia IV (975-984 A. D.) and whose son Jinadevan built a temple about 995 A. D. We also know that Acarya Ajitasena of the Senagana, the family preceptor of Camundaraya presided over the consecration of this image— the same guru had guided the Ganga King Marsimha II in performing Sallekhana in 974 A. D., and probably also presided over the consecration of the temple built by Jinadevan about 995 A.D. The poet Ranna, in his *Ajitanathapurana* (993 A.D.) claims to have been a protege of Camundaraya. And, Nemicandra Siddhanta-Cakravarti, who owned Indranandi (*939* A.D.), Kanakanandi, Abhayanandi and Viranandi (*circa* 950 A. D) as his gurus, and who wrote his *Trilokasara* in 973 A.D., assisted at the consecration of the Bahubali image, and specifically mentioned in his Gommatasara that Gommataraya (Camundaraya) had setup the Daksina-Kukkuta-Jina (the Bahubali colossus) on the Vindhyagiri. All these synchronisms clearly point to a period from about 950 to 995 A.D. for the principal actors in the drama, namely Camundaraya, Ajitasena and Nemicandra. Moreover, since Camundaraya makes no mention of the image in his Parana (978 A.D.), nor Nemicandra in his *Trilokasara* (973 A.D.), it is plausibly inferred that the image was set up sometime after 978 A. D. On the other hand, since Ranna speaks of its existence in 993 A. D. and Amitagati (993-1016 A. D.) utilised in his Sanskrit *Pancasangraha* (1016 A.D.), Nemicandra's *Gommatasara* which contains a definite reference to the image, the latter must have been erected sometime before 993 A.D. The time limits are thus narrowed to 978-993 A.D.

The scholar who advocated the 907 A.D. date, ignored all historical considerations and made the sole basis of his assumption on an inscription [24] from Cikka Hanasoge, which bears no date but is conjecturally assigned to circa 910 A.D. This short record contains the names of Ereya, presumably a ruler, Kalneldeva, a guru described as the moving Tirtha, and Gommatadeva, described as the fixed or immobile Tirtha or sacred place. There is nothing in the record to identify the first two or to fix it's date, yet presuming the ruler to be identical with Ereya, the Ganga King (c. 907-913 A. D.), the date of the erection of the Gommata image has been fixed as 907 A. D. Apart from the fact that this date is impossible for historical reasons, as discussed earlier, a ruler named Ereya, the father of Visnuvardhana Hoysala, and a guru named

Kalneledeva of the Surastha-gana are known to have belonged to about the end of the llth century A.D.[25] Hence, in all probability the inscription in question belongs to that period and not to the beginning of the 10th century, and is thus irrelevant for our purpose.

Similarly, the advocates of the 1028 A. D. date seem to have paid no heed to contemporary historical facts and even ignored the fact that the image was already in existence in 993 A.D. Prof. H. L. Jain even tried to support his contention by stating that Nemicandra, the author of Dravya-sangraha, whom he believed to be identical with the author of *Gommatasara*, lived in the reign of King Bhojadeva (*circa* 1019-1042 A. D.) of Dhara. But, it has been proved that the author of Dravya-sangraha is a different and later Nemicandra, and not the same person who wrote the Gommatasara.[26] Hence the date 1028 A. D. may as well be dismissed.

The difficulty is that there is no record of the date of the consecration of this Bahubali image except in the *Bahubali-caritra* or *Bhujbali-sataka* of Doddayya (1550 A.D.), which gives it as Sunday, the 5th day of the bright-half of the month of Caitra of year 600 of the Kalki era, when the Samvatsara was Vibhava, also supplying, certain astral indications of the time, viz., Sambhagya Yoga, Mrgasira naksatra, etc.[27] The details so minutely and precisely given appear to have been based on some well-founded tradition. But, the Kalki era commenced in 431 A. D. with the coming of the first Kalki who flourished at the end of the first millennium after the Nirvana of Mahavira (527 B. C.), dying in M. E. 1000 (or 473 A.D.) after reigning for 42 years. This would mean that the Kalki year 600 fell in 1031 A.D., which as we have already seen, cannot be the date in question. Therefore, all the scholars ignored the fact of the Kalki era, and arrived at their dates on the basis of the remaining data supplied by Dodayya, which according to S. C. Ghoshal corresponded to 2nd April, 980 A. D., and according to M. Govind Pai and Nemicandra Sastri to 13th March, 981 A. D. The latter date, however, is the most plausible one, and we have also arrived at the same date in our own way.

In fact, the Kalki year 600, which has been so baffling to scholars, presents no difficulty if we remember three factors— that in Karnataka in the middle ages there was a general belief, though mistaken, that the era of M. E. 605 was started by the Saka King of the name of Vikrama. Hence, they equated it with the popular Vikrama era and pushed up the date of Mahavira's Nirvana by 135 years, that is, to 662 B. C. —some people persist in continuing to believe so even now. Secondly, they thought that the Kalki appeared in M. E. 1000, forgetting that his 42 years reign was also included in that period. Thirdly, they believed that all the ancient eras commenced with the death of their founders, not from their birth or accession to the throne. Keeping these three things in mind, we find that according to them the Kalki appeared in (1000-662=)338 A.D., reigned for 42 years, and died in 380 A.D. when his era commenced. The year 600 of the Kalki era would, therefore, be equivalent to 980 A.D. But since the year changed with the first day of the bright half of

Caitra, the fifth day of that fortnight would fall in the next year or 981 A. D. Thus, the date of the consecration of the Bahubali colossus at Sravanbelgola would correspond to Sunday, 13th March, 981 A. D., which satisfies all the data including astral indications laid down in the *Bahubali-caritra.* And, this is the date now accepted by Pt. Kailashchandra Sastri and other present-day scholars, and on its basis, too, the present one-thousandth anniversary of the Gommatesvara is being celebrated with unprecedented grandeur and enthusiasm.

[Excerpts from the Author's article in Gommateshvara Commemaration Volume, 1981, pp. 34-45]

REFERENCES

1. Cf Jaina Antiquary, I, 3 (Dec. 1935), p. 47.
2. H. Zimmer, Philosophies of India.
3. Walhouse - cf. Sturrock, South Canara, I, p. 86.
4. M. H. Krishna, Jaina Antiquary, V, 4, p. 103.
5. Proceedings of 8th Sess. of AIOC, pp. 690-691; J. A., VI, I, p. 31.
6. Cf. Vipaksha-bala-dalana bahubalo, dhrita-jaya-bahu.
7. For the life story of Bahubali see the Adipurana of Jinasena, the Harivamsa Purana and the Padma Purana.
8. Some scholars place Podanapura near Takshashila in the north-west, others like K. P. Jain piace it somewhere near the northern border of South India, and M. Govind Pai identifies it with Bodhan in erstwhile Nizam's territory, Cf. J.A., VI, 1, p. 30 Fn. 7.
9. Ibid, pp. 29-30.
10. Ibid., p. 33.
11. Jain Sila-Lekha-Sangraha, 1, Nos. 17-18 (31), pp. 6-7, Intr. p. 2.
12. Ibid, No. 54 (67), p. 114 of 1128 A. D.
13. J. A., V,4, pp. 107-114.
14. Ibid, p.108
15. Dravyasangraha (SBJ., I, 1919), Introd.
16. Cf. JSB,VI,4, p. 209.
17. Ibid pp. 261-266
18. J. A., I, 3, p. 47.
19. J. A ,V,4, p. 102.
20. Gommatasara-Jivakanda (SBJ, V), Introd.
21. J. A., V,4, p. 138.
22. M. A. R., 1923.
23. J. S. S., I, Introd. pp. 28-32.
24. M.A. R , 1913-14, p. 28; J.A., V, 4, 107-114.
25. Cf J. S. S., I, Nos. 53, 56, 124, 130, 137, 138 for Ereya, and J. S. S. II, No. 269 for Kalneledeva.
26. Cf J. K. Mukhtar, Puratana Jain Vakya-Suci, Introd. pp. 92-94.
27. Cf. J. A., V, 4, p. 107; J. S. S., I, Introd. p. 29.

अपनी परम्पराओं को न भूलें

– श्री अजित प्रसाद जैन

दि. ६ अप्रैल, २००१ ई. को इंदिरा गांधी स्टेडियम, नई दिल्ली में संस्कृति मंत्रालय तथा भगवान महावीर मेमोरियल समिति के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित तथा माननीय प्रधानमंत्री जी द्वारा संबोधित भगवान महावीर २६००वें जयन्ती महोत्सव के ऐतिहासिक उद्घाटन समारोह में विशाल मंच के एक ओर भगवान महावीर स्वामी की एक भव्य प्रतिमा भी विराजित की गई थी।

जैन धर्म-संस्कृति में जिस स्थल पर तीर्थंकर देव की प्रतिष्ठित प्रतिमा स्थापित की जाती है उसे जिन मंदिर की संज्ञा दी जाती है, उस स्थल की शुचिता-पवित्रता का विशेष ध्यान रखा जाता है। जाहिर है कि किसी सार्वजनिक सभा के मंच को जिस पर अनेक राजनेता, समाज नेता एवं उच्च अधिकारी भी आसीन हों उसे मंदिर का रूप देना या कल्पना करना संभव ही नहीं। न ही राजनेताओं व मंचासीन अन्य मतावलम्बी गण्यमान्य महानुभावों से अपेक्षा की जा सकती है कि वे मंच पर जूते उतारकर तथा घड़ी की चैन, पर्स आदि चर्म वस्तुओं को मंच के नीचे ही उतारकर आवें तथा मंच पर भी मंदिर के समान विनयवंत मुद्रा में बैठें। अतः सार्वजनिक सभाओं आदि के मंच पर जिन प्रतिमा के स्थान पर किसी तीर्थंकर चित्र को ही रखने की परम्परा रही है तथा चित्र के सन्मुख ही दीप प्रज्ज्वलित करने की औपचारिकता पूर्ण कर ली जाती है। इसके अतिरिक्त प्रतिमा किसी एक आम्नाय की ही हो सकती है जिससे दूसरे आम्नाय के बन्धुओं को असन्तोष हो सकता है। अच्छा हो, यदि हमारे धर्म गुरु इस विषय पर अपना मार्गदर्शन दें।

दि. २ मई को उत्तर प्रदेश सरकार के राष्ट्रीय एकीकरण विभाग द्वारा रवीन्द्रालय सभागार, लखनऊ, में एक भव्य समारोह का आयोजन किया गया। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि थे उ.प्र. के राज्यपाल महामहिम श्री विष्णुकान्त शास्त्री तथा प्रमुख वक्ता थे अ.भा. दि. जैन शास्त्रि परिषद के अध्यक्ष प्राचार्य नरेन्द्र प्रकाश जी। महामहिम भारतीय संस्कृति के गहन अध्येता हैं तथा प्राचार्य जी जैन जगत के प्रख्यात विद्वान। दोनों ही महानुभावों के बड़े ही सारगर्भित अवसरानुकूल भाषण हुए। कार्यक्रम के अंत में आगरा के 'हम' ललित कला मंच द्वारा 'करुणा निधान भगवान महावीर ध्वनि एवं प्रकाश' नृत्य-नाटिका कार्यक्रम प्रस्तुत किया गया जिसमें कुछ प्रसंगों पर भगवान

महावीर का जीवन्त अभिनय भी मंचित किया गया। इस कार्यक्रम के अन्तिम चरण में कलाकारों ने णमोकार महामंत्र के उच्चारण के साथ भगवान महावीर के रूप में ध्यानस्थ कलाकार की दीप जलाकर आरती उतारी। इसके उपरांत मंच का संचालन कर रहे जैन बंधु द्वारा आमंत्रित किए जाने पर शास्त्रि परिषद के अध्यक्ष तथा धार्मिक विकृतियों एवं सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध समाज को जागरूक करने के मिशन को ही लेकर जन्मे धर्म संरक्षक अ. भा. दिगम्बर जैन परिषद के प्रदेशाध्यक्ष जी सहित जैन समाज के अनेक गण्यमान्य महानुभावों ने भी रामलीला की तर्ज पर उक्त कलाकार की भगवान महावीर के रूप में आरती करके अपने को धन्य किया।

जैन संस्कृति में तीर्थंकरों का तो क्या किसी भी परमेष्ठि का जीवन्त अभिनय मंचित करने की परम्परा नहीं रही है, अनन्त पुण्यशाली तीर्थंकर महाप्रभु का जीवन्त दृश्य प्रस्तुत करने में तो सामान्यकेवली भगवन्त भी सक्षम नहीं। दिगम्बर जैन मुनिराज के जीवन्त अभिनय के विषय पर जैन वाङ्मय में संरक्षित ब्रह्म गुलाल मुनि की एक प्राचीन आख्यायिका जैन समाज में बहुत प्रसिद्ध है। मुनि ब्रह्म गुलाल गृहस्थ पर्याय में एक जैन धर्मानुयायी राजा के दरबार में स्वांग-निपुण कलाकार थे। एक बार उन्हें राजदरबार में बाघ का जीवन्त अभिनय प्रस्तुत करने की राजाज्ञा मिली। राजाज्ञा शिरोधार्य करते हुए उन्होंने अभिनय में बाघ के किसी भी स्वाभाविक कृत्य से हुई दुर्घटना/हानि के लिए राजा से क्षमादान प्राप्त कर लिया। फिर एक दिन बाघ की खाल को अपने पूरे शरीर पर लपेटे बाघ के ही समान उछलते-कूदते, चिंघाड़ते, लाल-लाल आंखों के साथ क्रुद्ध मुद्रा में राज दरबार में प्रविष्ट हुए तथा चक्कर लगाते हुए उछलकर एक झापड़ राजपुत्र को मारकर उसी प्रकार उछलते -कूदते, चिंघाड़ते, बाहर निकल गए। राजपुत्र का तुरन्त प्राणान्त हो गया। राजा ब्रह्मगुलाल पर अत्यन्त क्रुद्ध हुआ, पर क्षमादान के वचन के कारण विवश था। दरबारियों के सुझाने पर राजा ने कुछ दिन बाद ब्रह्मगुलाल को दि. जैन मुनि का स्वांग भरकर आने को कहा (राज्य के कानून के अन्तर्गत मुनि का अभिनय निषिद्ध था तथा अभिनय करने वाले को प्राणदंड देने का प्राविधान था)। ब्रह्मगुलाल ने स्वांग प्रस्तुत करने के लिए एक मास की मोहलत मांगी जो प्रदान की गई। नियत दिन ब्रह्मगुलाल पिच्छी-कमंडलु लिए दिगम्बर मुनि वेश में सबको धर्मवृद्धि का आशीर्वाद देते हुए राजदरबार में पधारे। सबने खड़े होकर उनका स्वागत किया। राजा के संकेत पर राज नर्तकियों ने बड़ा ही कामुक-मोहक नृत्यगान प्रस्तुत किया जिसे वे पूर्ण निर्विकार भाव से देखा किये।

तदनन्तर राजसभा को धर्मोपदेश देकर चलने को उद्यत हुए। राजा सहित सभी सभासदों ने उनके निर्दोष स्वांग की भूरि-भूरि प्रशंसा की तथा राजा के संकेत पर भृत्यगण् उनके लिए भेंट-उपहार लेकर आए। उन्होंने उपहारों को अस्वीकार करते हुए कहा राजन् मैंने एक मास संयम-साधना का कठोर अभ्यास करके आज प्रातःकाल ही गृह त्याग करके श्री गुरु महाराज से जैनेश्वरी दीक्षा ली है और अब मैं नगर के बाहर वन खंड में विराज रहे श्री गुरुमहाराज के चरणों में ही जा रहा हूँ। दिगम्बर जैन मुनि की चर्या जी जाती है, उसका अभिनय नहीं होता।

तो यह है हमारी संस्कृति की परम्परा। अब यह दूसरी बात है कि आज कई मुनिवेशी परम पूज्य दिगम्बर जैन साधु परमेष्ठि का अभिनय मात्र ही तो करते हैं और आस्थावान श्रद्धालुजनों के पूज्य बने विचर रहे हैं।

उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा आयोजित २६००वें जन्म महोत्सव के कार्यक्रमों में एक और विचित्र बात देखने में आई। मंच पर छाए कुछ जैन बन्धुओं द्वारा कार्यक्रम के प्रारंभ में स्व. आचार्य शांतिसागरजी की जयकार तथा उसके बाद तथा बीच-बीच में एवं बार-बार जैन धर्म की सर्वोच्च गणिनी आर्यिका ज्ञानमती माताजी की ही जय जयकार करना, प्रमुख नेताओं को उनके ही फ्रेम्ड फोटो भेंट करना यही संदेश दे रहा था कि इस समय दिगम्बर जैन धर्म की सर्वोच्च संत गणिनी आर्यिका जी ही हैं तथा २६००वें जन्म कल्याणक महोत्सव के कार्यक्रम भी कदाचित् उन्हीं की प्रेरणा से आयोजित किए जा रहे हैं। अतः राजनेता एवं उच्च अधिकारी भी जैन समाज की भावनाओं का सम्मान करते हुए अपने उद्बोधन का प्रारंभ पूज्य माताजी के चरणों में अपनी विनयांजलि अर्पित करने के साथ ही कर रहे थे।

इस समय लाखों दिगम्बर जैनों की श्रद्धा के केन्द्र तथा आचार्य, उपाध्याय, साधु, परमेष्ठी की संज्ञा से संबोधित किए जा रहे राष्ट्रसंत वयोवृद्ध आचार्य श्री विद्यानंद मुनि जी, संत शिरोमणि आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज, स्व. आचार्य श्री शांतिसागरजी के पट्टासीन आचार्य श्री वर्द्धमानसागरजी महाराज सहित शताधिक संत देश में विद्यमान हैं जिनमें से अनेक अपनी निर्दोष चर्या के लिए भी विख्यात हैं। यह चिंतनीय है कि पूज्य माताजी के प्रति इस प्रकार के भक्तिरेक से कहीं इन परमेष्ठि संतों का अवर्णवाद तो नहीं हो रहा?

(शोधादर्श-४४ जुलाई २००१ से उद्धृत)

लौकिक और पारलौकिक ज्ञान

- डॉ. शशि कान्त

सामान्य व्यक्ति की दृष्टि से ज्ञान के दो रूप क्रमशः लौकिक और पारलौकिक हैं। जो ज्ञान हम अपनी इन्द्रियों के माध्यम से परीक्षण द्वारा अथवा अनुभव करके प्राप्त करते हैं, उसे लौकिक ज्ञान की श्रेणी में रखा जा सकता है। सामान्य रूप में इसे इन्द्रिय-अनुभूत ज्ञान (empirical knowledge) कहा जाता है। इसका आधार प्रत्यक्ष प्रमाण और उस प्रमाण के विवेचन, विश्लेषण और सम्प्रेषण पर निर्भर करता है।

दूसरे प्रकार का ज्ञान पारलौकिक, परालौकिक, आध्यात्मिक या दैवी के नाम से अभिहित किया जाता है। इसका आधार प्रत्यक्ष दर्शन और उस पर आधारित अनुभव जन्य चिन्तन नहीं होता, वरन् उसका स्रोत एक अदृश्य आंतरिक प्रेरणा माना जाता है। इस आंतरिक प्रेरणा को विभिन्न शब्दों के माध्यम से अलग-अलग धर्म-दर्शनों में सूचित किये जाने का प्रयास किया जाता रहा है। पश्चिमी दर्शनों यथा-ईसाईयत और इस्लाम में इसे Revelation या इल्हाम कहा गया है। भारतीय दर्शनों में ऐसे ज्ञान को ऋषि द्वारा दृष्ट, निगम, बोधि और कैवल्य के नाम से सूचित किया गया है। यह वह परम ज्ञान है जिसकी कोई सीमा नहीं है, जिसमें शंका का कारण नहीं है और जो एक ऐसा अंतिम सत्य है जिसका साक्षात् तप-ज्ञान-विशिष्ट को ही सुलभ होता है। इसी को वैदिक परंपरा में निगम और आगम, बौद्ध परंपरा में बोधि और जैन परंपरा में कैवल्य कहा गया है। निगम, बोधि और कैवल्य वह ज्ञान है जो विशिष्ट व्यक्तियों को स्वतः अंतःप्रेरणा और स्वमेव चिन्तन-मनन से प्रत्यक्ष होता है।

आध्यात्मिक ज्ञान के चार स्रोत क्रमशः निगम, आगम, श्रुति और स्मृति माने जाते हैं। वैदिक परंपरा में वेदों को ही और उन पर आधारित ज्ञान को ही इस श्रेणी में रखा जाता है। बौद्ध परंपरा में भगवान बुद्ध के वचनों को ही ज्ञान का आधार माना गया है। भगवान बुद्ध को जो बोधि प्राप्त हुई थी उसको निगम कहा जा सकता है और उनके मुख से प्राप्त ज्ञान को आगम कहा जा सकता है।

जैन परंपरा में तीर्थंकर भगवान को तथा अन्य केवली भगवन्तों को कैवल्य या केवलज्ञान की जो उपलब्धि होती है उसे निगम कहा जाना समीचीन होगा। तीर्थंकर भगवान के मुख से जो ज्ञान प्राप्त हुआ वह प्रभाव रूप में आगम कहा जाना चाहिए।

श्वेताम्बर परंपरा में अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर द्वारा स्वयं अपने मुखारविन्द से उपदेश दिए गए थे, सैद्धांतिक रूप से उसे ही आगम (केवली से सीधे प्राप्त ज्ञान) कहना समीचीन होगा। भगवान के जो उपदेश उनके गणधरों द्वारा उनकी निरक्षर वाणी से प्राप्त कर निबद्ध किए गए वे श्रुत की श्रेणी में आते हैं। दिगम्बर परंपरा में भगवान ने अपने मुख से उपदेश नहीं दिए, वरन् उनकी दिव्य ध्वनि खिरी और उसके आशय को उनके गणधर इन्द्रभूति गौतम ने ग्रहण कर उसका निर्वचन किया, अतः भगवान का उपदेश श्रुत के रूप में प्राप्त हुआ। श्रुत का सामान्य अर्थ है 'सुना हुआ'। स्मृति, अर्थात् जो स्मरण में रह जाए, श्रुति का वह अंश है जो परंपरानुगत आचार्य परंपरा में स्मृति में शेष रह गया।

निगम या कैवल्य, आगम, श्रुति और स्मृति का उपरोक्त विवेचन उक्त शब्दों के अर्थ-भाव की अपेक्षा से किया गया है। शास्त्रीय विवेचन से इसका तादात्म्य न हो ऐसा संभव है, अतः शास्त्र-प्रवीण विद्वानों से विनम्र निवेदन है कि वे इसके सामान्य जन के लिए ग्रहणीय वस्तुनिष्ठ सूचन को मात्र उसी रूप में ग्रहण करें और किसी शास्त्रोक्त विवेचन की अवज्ञा या अवमानना के रूप में न देखें।

२५-०१-२००६ – ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ

सूचना

दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी द्वारा संचालित **अपभ्रंश साहित्य अकादमी** के **'पत्राचार प्राकृत सर्टिफिकेट पाठ्यक्रम'** का आठवां सत्र **१ जुलाई, २००६** से प्रारम्भ होगा। इसमें प्राकृत, संस्कृत, हिन्दी एवं अन्य भाषाओं/विषयों के प्राध्यापक अपभ्रंश, प्राकृत शोधार्थी एवं संस्थानों में कार्यरत विद्वान् सम्मिलित हो सकेंगे। नियमावली एवं आवेदन पत्र दिनांक **२५ मार्च से १५ अप्रैल, २००६** तक अकादमी कार्यालय, दिगम्बर जैन नसियां भट्टारकजी, सवाई रामसिंह रोड, जयपुर-३०२००४ से प्राप्त करें।

जैन साहित्य में संगीत

-डॉ० मीना अग्रवाल

('जैन साहित्य' एक व्यापक संज्ञा है। इसमें दिगम्बर, श्वेताम्बर और स्थानकवासी सभी आम्नायों का साहित्य समाहित है। सभी आम्नायों के साहित्य में संगीत के तीनों तत्त्वों-गायन, वादन और नृत्य का प्रचुर उल्लेख और विवेचन मिलता है। जहाँ श्वेताम्बर आम्नाय के सूत्र ग्रन्थों में संगीत का विशद वर्णन हुआ है, वहीं दिगम्बर आम्नाय के पुराण ग्रन्थ-हरिवंश पुराण, पद्मपुराण, आदिपुराण, महापुराण आदि; साहित्यिक कृतियां-यशस्तिलक चम्पू, कार्तिकेयानुप्रेक्षा आदि तथा आधुनिक काल में कविवर वृन्दावन लाल आदि द्वारा रचित भजन-पूजन संगीत से भरपूर हैं। प्रस्तुत लेख की विदुषी लेखिका डॉ. मीना अग्रवाल ने अपना विवेचन मात्र श्वेताम्बर सूत्र साहित्य पर आधारित किया है, यह समग्र जैन साहित्य का निदर्शक नहीं है। - रमा कान्त जैन)

रस बोधक साहित्य लखि, सुर बोधक संगीत,
रस सुर एक मिलान ही, है योगिन की रीत।

रसों का ज्ञान कराने के लिए साहित्यशास्त्र है और स्वरों का ज्ञान कराने के लिए संगीतशास्त्र है। संगीत और साहित्य (स्वर और रस) का मेल ही योग कहलाता है।[1]

साहित्य और संगीत वाणी के ही दो प्रकार हैं। एक में शब्दों की प्रधानता है तो दूसरे में स्वरों की। संगीत का अस्तित्व अनादिकाल से विद्यमान है। इसीलिए हर युग के साहित्य में संगीत स्वतः समाहित होता रहा है, चाहे वह वैदिकयुग हो, रामायण-महाभारत काल हो या श्रमण पुनरुद्धार युग अथवा मध्य युग या आधुनिक काल हो। 'श्रमण' के अन्तर्गत जैन तीर्थंकरों और महात्मा बुद्ध के अनुयायी आते हैं। यहाँ 'जैन साहित्य में संगीत' का विवेचन मुख्यतया श्वेताम्बर आम्नाय के सूत्र साहित्य के आधार पर प्रस्तुत है।

जैन सूत्रों में संगीत के तीन तत्त्वों-गायन, वादन, नृत्य का उल्लेख मिलता है। यथा-

गायन्ताणि वा वायंताणि वा नच्चन्ताणि।[2]

जैन-साहित्य में गायन और गीत-संबंधी अनेक उल्लेख नृत्य और वाद्य के साथ मिलते हैं-

१. गीयरईप्पिया, नच्चणसीला।[3]

२. नट्टं गीतं वाईयं सरगयं पुक्खरगयं, समतालं।[4]

जैन सूत्रों में गायन की विशेषताओं पर भी प्रकाश डाला गया है। मंद्र स्वर, मध्य स्वर और तार स्वर में गीत गाने की बात भी कही गई है। गीत के प्रकार बताए हैं-१. मृदुगीत ध्वनि, २. तीव्र गीत ध्वनि एवं, ३. क्षययुक्त हल्की गीत ध्वनि। गायन के छह दोषों का वर्णन भी मिलता है-डरकर गाना, शीघ्रता से गाना, धीरे गाना, बेताला गाना, काक स्वर से गाना और नाक से गाना। गायन के आठ गुण भी बताए हैं-पूर्ण कला से गाना, राग को रंजक बनाकर गाना, अन्य विशेष स्वरों से अलंकृत करके गाना, स्पष्ट रूप से गाना, मधुर स्वर में गाना, ताल के साथ गाना, स्वर को मिलाकर गाना आदि।[५]

सात स्वरों पर आधारित गान को गीत कहा गया है। गीत को दोषरहित, अर्थयुक्त, काव्यालंकार युक्त, उपसंहार, मधुर शब्दार्थ वाला तथा प्रमाणयुक्त होना चाहिए। उस समय संस्कृत और प्राकृत भाषा में गाना स्वीकार्य था।[६]

इसी प्रकार गायन करने वाली स्त्री की पहचान इस प्रकार बताई है-श्यामा १६ वर्षीय युवती का गायन मधुर, काली का गायन रुक्ष, गोरी का गायन चतुराई से पूर्ण होता है और कानी स्त्री विलंब से, अंधी शीघ्र गति से, पिंगला और कपिला ख़राब स्वर से गाती है। गायन में ताल, वाद्य, पद, लय, गाथा, श्वास आदि का ध्यान रखना चाहिए।[७]

जैन-साहित्य में संगीत के कुछ पारिभाषिक शब्दों का भी विवरण प्राप्त होता है। षड्ज, ऋषभ, गांधार, मध्यम, पंचम, धैवत, निषाद और इनके सात स्थानों का उल्लेख भी हमें जैन-साहित्य में प्राप्त होता है। इन स्वरों का संबंध भिन्न-भिन्न जीवों से जोड़ा गया है। जैसे-षड्ज का संबंध मयूर से बताया है, ऋषभ का कुक्कुट से और पंचम का संबंध कोयल से बताया ह।[८]

इसी प्रकार सप्त स्वरों का वाद्यों से भी संबंध जोड़ते हुए सा को मर्दल से, रे को गोमुही से, ग को शंख से, म को झल्लरी से, प को दर्दुरी से, ध को ढोल से और नि को महाभेरी से संबंधित बताया ह।[९]

जैन-साहित्य में ग्राम और मूर्च्छना का वर्णन भी मिलता है। षड्ज ग्राम, मध्यम ग्राम एवं गांधार ग्राम तथा इनकी सात-सात मूर्च्छनाओं का भी उल्लेख मिलता है। इनका क्रम भरतमुनि द्वारा किए गए वर्णन से कुछ भिन्न है।

संगीत का दूसरा महत्त्वपूर्ण तत्त्व वादन है। इसके अंतर्गत वाद्य आते हैं। जैन सूत्रों में अनेक प्रकार के वाद्यों का वर्णन हुआ है। **आचारांग सूत्र** में आतोद्य संज्ञा एवं तत, वित, घन एवं सुषिर चारों प्रकार के वाद्यों का उल्लेख हुआ है।

तत वाद्यों अर्थात् तंत्री वाद्यों के अंतर्गत अनेक प्रकार के वाद्यों का उल्लेख जैन सूत्रों में मिलता है। **आचारांग सूत्र** में तंत्री वाद्यों में वीणा का महत्त्वपूर्ण स्थान माना

गया है। वीणा, विपंची, तुंबवीणा, धंकुन, तुणक, वद्धीसक, कच्छपी, भामरी, वल्लरी इत्यादि वाद्यों का उल्लेख **आचारांग सूत्र** में आया है।[१०]

सूत्रकृतांग में वेणु पालाशिक वीणा का उल्लेख आता है। यह बाँस या पलाश के टुकड़े से निर्मित होती थी, जिसका वादन दाँत एवं बाएँ हाथ के मध्य रखकर वीणा की भाँति हाथों से किया जाता था।[११]

वीणावादकों का उल्लेख **आचारांग सूत्र** तथा **कल्पसूत्र** में मिलता है।[१२]

वितत अथवा आनद्ध वाद्यों का उल्लेख जैन-साहित्य में मिलता है। **आचारांग सूत्र** में मृदंग, दुंदुभि, झल्लरी, पटह, नंदि-मृदंग, भेरी, पणव, हुडुक, भंभा आदि वाद्यों का उल्लेख मिलता है। झल्लरी, खंजरी की भाँति का ही कोई प्रकार रहा होगा। हुडुक भी इसी वर्ग का वाद्य है। हुडुक का प्रचार आज भी है।

सुषिर वाद्यों के अंतर्गत शंख, वेणु, पिरिपिरिया, तूणइल्ल (वैगपाइप), श्रृंग आदि का उल्लेख मिलता है। 'तूणइल्ल' की व्याख्या पाश्चात्य विद्वान जैकोबी ने बैगपाइप के रूप में की है। बैगपाइप के कभी-कभी एक से अधिक मुख भी होते हैं। पिरिपिरिया तथा खरमुही वाद्यों के स्वरूप के विषय में कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता है। पिरिपिरिया नाम से ऐसा आभास होता है, जैसे कोई साधारण-सा फूँक से बजाया जाने वाला वाद्य होगा। आज भी छोटे बच्चों में फूँककर बजाए जाने वाला 'पीपी' नाम का पीपल की पत्ती या ताड़ के पत्ते का वाद्य प्रचलित है। हो सकता है 'पिरिपिरिया' 'पीपी' की भाँति का कुछ परिष्कृत स्वरूप का ही वाद्य रहा हो।

लय-संबंधी वाद्य घन वर्ग के अंतर्गत आते हैं। जैन-साहित्य में लय-संबंधी वाद्यों में कांस्य ताल का उल्लेख मिलता है, जो आज मजीरे का द्योतक समझा जा सकता है। कुछ ऐसे वाद्यों का उल्लेख भी जैन सूत्रों में मिलता है, जिनके स्वरूप के विषय में कोई उल्लेख नहीं किया गया है। **आचारांग सूत्र** में लत्तिय, गौहिय, किरिकिरिय आदि वाद्ययंत्रों का नामोल्लेख तो मिलता है, लेकिन विस्तार से उनके आकार-प्रकार के विषय में कोई जानकारी नहीं दी गई है। किरिकिरिय करताल की तरह का वाद्य हो सकता है। **आचारांग सूत्र** के अंग्रेज़ी अनुवाद में पाश्चात्य विद्वान् जैकोबी ने 'तूर्य वाद्ययंत्र की व्याख्या सुषिर वाद्य तुरही के रूप में की है।[१३]

रायापसेणि सूत्र में जिन वाद्यों का उल्लेख हुआ है, वे हैं-शंख, सिंग, शंखिया, खरमुही, पिरिपिरिया, पणव, पडह, भंभा (ढक्का के नाम से भी) होरंभा, भेरी, झल्लरी, दुंदुही, मुरय, मुईंग, नंदीमुईंग, कुतुंबी, आलिङ्ग्य, गोमुही, मद्दल, वीणा, विपंची, वल्लकी, महती, कच्छपी, चित्तवीणा, वदघोसा, सुघोषा, नंदिघोषा, रणसिंगा,

काहली, भामरी, चंभामरी, परवायणी, तूण, तुंब, वीणा, आभति, झंझा, नकुल, मुगुंद, हुडुक्की, विचिक्की, करडा, डिण्डिम, किणिय, कडंब, दद्दरिया, (गोहिय नाम से भी), दद्दरगा, कलकिया, महुप, तल, ताल कंसताल, रिंगिरिसिया, लत्तिया, मगरिया, सुंसुमरिया, वंस, वेलु, वाली, परिल्ली वद्धंगा।[१४]

ये सभी वाद्य तत, वितत, सुषिर और घर चारों प्रकार के वाद्यों का संकेत करते हैं। कुछ वाद्यों को उनके नामों से समझा जा सकता है लेकिन कुछ वाद्यों के विषय में जानकार नहीं मिलती। जैसे-किणिय वाद्य तमिल प्रदेश में प्रचलित 'किण्ई' नामक ढोल का द्योतक माना जा सकता है। इसी प्रकार 'चित्तवीणा' विचित्रवीणा का ही प्रारंभिक रूप होगा और -'कलसिया वाद्य' से संभवतः वाद्य कलश की ओर संकेत होगा।

संगीत का तीसरा तत्त्व है नृत्य। गायन और वादन के साथ नृत्य का उल्लेख अनेक स्थानों पर हुआ है। नृत्य के कई प्रकारों का वर्णन हुआ है। प्रथम प्रकार का नृत्य वह है, जिसमें नर्तक बिना किसी वस्तु की सहायता के नृत्य करता है। दूसरा नृत्य वह है, जब नर्तक रस्सी पर चढ़कर नृत्य करता है। इसे 'जल्ल' कहा गया है। तीसरे प्रकार का नृत्य डंडे की सहायता से अथवा बाँस पर चढ़कर किया जाता है, ऐसा नृत्य करने वाले को 'लंख' कहा गया है। ये नृत्य लोकनृत्यों के प्रदर्शन के लिए तथा जीविका-उपार्जन के लिए किए जाते थे।[१५] आज भी नट इस प्रकार के नृत्यों का प्रदर्शन कर अपनी जीविका चलाते हैं। उड़ीसा में आज भी छोटे-छोटे बच्चे लंबे-लंबे बाँसों पर पैर बाँधकर नृत्य करते देखे जा सकते हैं। वेश्या वर्ग के साथ भी नृत्य उनकी जीविका से जुड़ा हुआ था। वेश्याओं द्वारा उत्सवों में नृत्य-प्रदर्शन का उल्लेख भी जैन-साहित्य में मिलता है।[१६]

इस प्रकार हम देखते हैं कि संगीत का विपुल प्रचार और प्रसार उसके महत्त्व को दर्शाता है। जैन युग में संगीत के शास्त्रीय रूप का विकास महाभारतकाल से भी अधिक हुआ। जनसाधारण भी संगीत के उत्कृष्ट एवं पावन रूप से पूर्ण परिचित हुआ। इस युग में संगीत के विकास के लिए संगठित प्रयास किए गए। अतः संगीत के द्वारा समाज में एकसूत्रता स्थापित हो गई। अतः इस काल में संगीत का सुंदर और कल्याणकारी रूप देखने को मिलता है। सुप्रसिद्ध पाश्चात्य विद्वान वाल्टेयर न अपने लोकप्रिय ग्रंथ The History of Internal Facts of Indian Music में भारतीय संगीत के यथार्थ चित्र को प्रस्तुत करते हुए कहा है-

'जैन युग में हमें बड़ा ही सजीव, प्राणवान तथा स्फूर्तिपूर्ण संगीत मिलता है। इस युग के संगीत ने अपने पुराने जातीय बंधनों को तोड़ दिया था और वह सबके लिए

साधना का मुख्य विषय बन गया था। संगीत की इस अभिनव करवट से पिछड़ी हुई कौमों तथा शूद्रों ने, जो अब तक संगीत-ज्ञान से वंचित रखे जाते थे, पूरा-पूरा लाभ उठाना आरंभ कर दिया था और इस प्रकार जैनयुग में मानव की सबसे बड़ी भूल का परिष्कार किया गया। इससे संगीत का रूपक व्यापक हो गया। संगीत की वेगपूर्ण धारा रंक से लेकर राजा तक धारावाहिक रूप से प्रवाहित होने लगी। संगीत के शिल्पक ज्ञान का भी इस युग में विकास हुआ। अनेक नवीन-नवीन ध्वनियों तथा गायनशैलियों ने जन्म लिया। वाद्यों में मदृंग, वीणा और दुदुभी, डफ का प्रयोग होता था। नृत्यों के आयोजन सार्वजनिक स्थलों पर किए जाते थे, किंतु राजदरबारों में नृत्य समारोह अधिक किए जाते थे, जिनमें श्रेष्ठ परिवारों की कन्याएं भाग लेती थीं। जो कुमारियां सार्वजनिक रूप से नृत्य करतीं थीं, उनकी प्रतिष्ठा समाज में उच्च समझी जाती थी, उनको कोई कुदृष्टि से नहीं देख सकता था। उनका मान-सम्मान उतना ही था, जितना किसी राजा का। लेकिन उनका चरित्र बड़ा ही निर्मल होता था। समाज में संगीत का गौरव उच्च परंपरा पर था। संगीत के संचालन की बागडोर ब्राह्मणों से हटकर सर्वसाधारण के हाँथों में पहुँच चुकी थी, इसलिए अब संगीत के अंदर सर्वसाधारण का सामान्य संगीत भी जुड़ गया था।'

अस्तु, हम कह सकते हैं कि जैनयुग एक अपूर्व मानसिक, आध्यात्मिक और कलात्मक क्रांति का युग था, जिसने संगीत की आत्मिक पृष्ठभूमि को सुदृढ़ किया और संगीत के आत्मिक सौंदर्य के पुनीत द्वार को मानवमात्र के लिए उन्मुक्त कर दिया। इस युग का संगीत सत्यं, शिवं और सुंदरम् से अभिसिंचित था, जिसने मानव-समाज को नई दिशा दी और उन्नति के नए-नए मार्ग प्रशस्त कर संगीत को नई डगर पर आगे तक बढ़ाया और संगीत-रश्मियों को यत्र, तत्र, सर्वत्र विकीर्ण कर दिया, जिससे जन-मन आंदोलित हो उठा।

संदर्भ :

१. **भारतीय संगीत**, आचार्य उत्तम राम शुक्ल, पृ. २०६। २. **आचारांग सूत्र,** २.११.२८, पृ० ११७। ३. **समवायांगसूत्र,** पृ. १६७। ४. **समवायांग सूत्र,** पृ. १७६। ५. **स्थानांग सूत्र,** पृ० ६७४-७८। ६. **स्थानांग सूत्र,** पृ० ६७८-८०। ७. **स्थानांग सूत्र,** पृ. ६८०। ८. **स्थानांग सूत्र,** पृ. ६७१-७२। ९. **स्थानांग सूत्र,** पृ. ६७२। १०. **आचारांग सूत्र,** पृ. ११६। ११. **सूत्रकृतांग**। १२. **कल्पसूत्र,** पृ. २२३-२५३ एवं **आचारांग सूत्र,** पृ. ११६। १३. **आचारांग सूत्र,** पृ. १२०। १४. **रायापसेणिसूत्र,** पृ० ६२-६८। १५. **कल्पसूत्र,** पृ० ११७-१८। १६. **ज्ञाताधर्म कथांग सूत्र,** पृ० ६४ तथा **कल्पसूत्र,** पृ० १२०।

- १६, साहित्य विहार, बिजनौर (उ०प्र०)

पालि-प्राकृत मुक्तक काव्य का समीक्षात्मक अध्ययन

- डॉ. रजनीश शुक्ल

(मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर, के जैन विद्या एवं प्राकृत विभाग में विद्या वाचस्पति उपाधि के लिये स्वीकृत उपर्युक्त शोध-प्रबंध का सार-संक्षेप यहाँ प्रस्तुत है। - सम्पादक)

भगवान् बुद्ध और महावीर ने अपने उपदेशों का माध्यम जनसामान्य में प्रचलित जनभाषा पालि और प्राकृत को बनाया था। उस समय के गणधरों और श्रुतधरों तथा भिक्षुओं और भिक्षुणियों ने बुद्ध और महावीर के उपदेशों को सुरक्षित रखा था। कुछ समय पश्चात् उन उपदेशों को लेखन के माध्यम से सुरक्षित किया गया। उस समय के अधिकांशतः उपदेश काव्यात्मक शैली में रखे जाते थे, जिससे कि वे आगे भी विद्यमान रहे। पालि और प्राकृत के मुक्तक काव्यों, गीतिकाव्यों, **धम्मपद, थेरगाथा** और **थेरीगाथा,** जो कि मानव जीवन के मूल्यों से किसी न किसी रूप में जुड़े हुए हैं, को विद्वानों ने संकलित करके श्रुत परम्परा को जीवित रखा है।

साहित्यिक प्राकृत का विकास बोलचाल की जन-भाषा से हुआ है। दूसरे शब्दों में असाहित्यिक प्राकृत से हुआ, जैसे वैदिक भाषा या छन्दस् का। यही कारण है कि वैदिक भाषा और प्राकृत में अनेक स्थलों पर सादृश्य प्राप्त होता है। भारत की प्राचीन भाषाओं में प्राकृत भाषाओं का महत्वपूर्ण स्थान है। लोक भाषाओं के रूप में प्रारम्भ में इनकी प्रतिष्ठा रही और क्रमशः ये साहित्य और चिन्तन की भाषाएं बनीं। प्राकृत प्राचीन भारत के जीवन और साहित्यिक जगत् की आधार भाषा है। जनभाषा से विकसित होने के कारण और जन-सामान्य की स्वाभाविक (प्राकृतिक) भाषा होने के कारण इसे प्राकृत भाषा कहा गया है। भगवान महावीर ने प्राकृत में और भगवान बुद्ध ने पालि (जो कि प्राकृत का एक प्राचीन रूप है) में अपने उपदेश दिये।

लोकसभा जब जन-जन में लोकप्रिय हो जाती है तथा उसकी शब्द-सम्पदा बढ़ जाती है तब वह काव्य की भाषा भी बनने लगती है। प्राकृत में जो आगम ग्रन्थ, व्याख्या साहित्य, कथा एवं चरितग्रन्थ आदि लिखे गये उनमें काव्यात्मक सौन्दर्य और मधुर रसात्मकता का समावेश है। काव्य की प्रायः सभी विधाओं-महाकाव्य, खण्डकाव्य, मुक्तककाव्य आदि को प्राकृत भाषा ने समृद्ध किया है।

प्राकृत में मुक्तक परम्परा का आरंभ ईसा की प्रथम शताब्दी से होता है और उसका सबसे महान एवं सर्वाधिक महत्वपूर्ण कोष-ग्रन्थ है महाकवि हाल की **'गाहासतसई'**। इसकी प्रत्येक गाथा अपने आप में स्वच्छन्द है, स्वमात्रविश्रांत है।

अपनी अर्थ-प्रतीति के लिए वह किसी अन्य गाथा पर अवलम्बित नहीं है। ऐसे मुक्त पद्यों का काव्याशास्त्रीय नाम 'मुक्तक' है। मुक्तक वह पद है जो परतः निरपेक्ष रहते हुए पूर्ण अर्थ की अभिव्यक्ति में समर्थ हो, काव्य के लिए अपेक्षित चमत्कृति इत्यादि विशेषताओं से युक्त हो, अपनी काव्यगत विशेषताओं के कारण जो आनन्द देने में समर्थ हो, जिसका गुम्फन अत्यन्त रमणीय हो और जिसका परिशीलन ब्रह्मानन्द-सहोदर रस की चर्वणा के प्रभाव से हृदय की मुक्तावस्था को प्रदान करने वाला हो। काव्य के संदर्भ में 'मुक्तक' की यही परिभाषा है।

हमारी दृष्टि से मुक्तक ऐसी रचना को कहते हैं जिसके पद्य या छंद परस्पर निरपेक्ष हों एवं उसमें पौर्वापर्य संबंध का अभाव हो। इसमें रस का पूर्ण प्रवाह हो अर्थात् मुक्तक काव्यरस से आपूर्ण हो। इसमें उक्ति वैचित्र्य या अभिव्यक्ति सौन्दर्य का विधान किया गया हो। इसमें कार्य का आत्मानुभाव व्यक्त होता है अर्थात् जब कवि अपनी विशेष क्षण की अनुभूति को अत्यंत तीव्रता के साथ अभिव्यक्त करता है तो उसमें आत्मनिष्ठता का समावेश हो जाता है। ऐसी ही आत्माभिव्यंजक रचना मुक्तक काव्य है। मुक्तक में भाव वैभव एवं कलात्मक संपत्ति का समग्र वेग रहता है। इसमें रस परिमाप के अतिरिक्त कवि का व्यास चमत्कार प्रदर्शन की ओर भी रहता है। कवि रणात्मक आवेग से भरकर हृदयगत भावों की व्यंजना करता है। अतः उसमें पाठकों के मनोवेगों को तरंगित करने की अधिक शक्ति होती है। मुक्तककार अपनी रचना में चातुर्य का प्रदर्शन करके पाठकों के हृदय में रस की धारा प्रवाहित कराने की अपेक्षा छोटे-छोटे छींटें ही उठाने में अपना कर्तव्य मान लेता है।

पालि और प्राकृत भाषा में काव्य-रचना प्राचीन समय से ही होती रही है। आगम ग्रन्थों एवं शिलालेखों में अनेक काव्य-तत्वों का प्रयोग हुआ है। प्राकृत भाषा के कथा-साहित्य एवं चरित ग्रंथों में भी कई काव्यात्मक रचनाएं उपलब्ध हैं। पादलिप्त की **तरंगवती-कथा** तथा विमलसूरि के **पउमचरिय** में कई काव्यचित्र पाठक का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करते हैं। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, श्लेष आदि अलंकारों का प्रयोग भी इनमें हुआ है।

भारतीय वाङ्मय में पालि, प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश और हिन्दी आदि विभिन्न भाषाओं में मुक्तक काव्य, गीतिकाव्य, महाकाव्य, खंडकाव्य, चम्पूकाव्य की रचनाएँ की गयी हैं। पालि में **उदान, धम्मपद, सुत्तनिपात, थेरगाथा, थेरीगाथा, मज्झिमनिकाय, संयुक्तनिकाय** आदि तथा प्राकृत ग्रन्थों में **आचारांगसूत्र, उत्तराध्ययनसूत्र, दशवैकालिकसूत्र,** आचार्य कुन्दकुन्द के ग्रन्थ, **भगवती आराधना, सेतुबंध, कुमारपालचरित, गउडवहो, कंसवहो, कुवलयमालाकहा, समराइच्चकहा** आदि अनेक तरह के काव्यों और कथाओं की रचना की गयी है।

प्रबन्ध काव्यों की अपेक्षा मुक्तक काव्यों की ओर पाठक अधिक आकृष्ट होते हैं। इसका प्रमुख कारण है मुक्तकों का श्रृंगार आदि अनेक प्रकार के रसों से पूर्ण होना। मुक्तक के प्रत्येक पद की स्वतंत्र सत्ता होती है और वे स्वतंत्र रूप से भाव व्यक्त करने में भी सक्षम होते हैं। इन मुक्तकों की शब्द शैली में भावों की प्रधानता होती है। मुक्तक काव्य में भाव सहज संप्रेषणीय होता है।

पालि साहित्य में मुक्तकों की दृष्टि से **खुद्दक निकाय के धम्मपद, सुत्तनिपात, थेरगाथा, थेरीगाथा** आदि ग्रंथ महत्वपूर्ण हैं। इन सबमें तत्कालीन जन-समुदाय की रुचि, व्यवसाय, विद्या, कला, विज्ञान, राजनीति, ग्राम, नगर, जनपद लोगों का रहन-सहन, खेती, व्यापार, सामाजिक रीतियां, समाज में स्त्रियों का स्थान, दास-दासियों और नौकरों की अवस्था प्रभृति अनेक उपयोगी विषयें का समावेश मिल जाता है। प्राकृत भाषा में लिखित मुक्तक या गीतिकाव्य के ग्रन्थों में आगम और उनके व्याख्यात्मक साहित्य के अतिरिक्त **गाथासप्तशती, वज्जालग्गं, गाहाकोष,** आदि महत्वपूर्ण रचनाएं हैं। जिनका प्रभाव परवर्ती मुक्तक काव्य परम्परा, शतक, सूक्ति एवं सुभाषितकारों पर भी दिखाई पड़ता है।

इस शोध-प्रबंध को पांच अध्यायों में विभक्त किया गया है जिनका संक्षेप में परिचय निम्न प्रकार है-

प्रथम अध्याय में भाषा के विकासक्रम में पालि भाषा और प्राकृत भाषा के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए प्राकृत साहित्य और पालि साहित्य के प्रमुख ग्रन्थों की समीक्षा कर मुक्तक के स्वरूप को स्पष्ट किया गया है।

द्वितीय अध्याय में पालि और प्राकृत के मुक्तक ग्रन्थों का समीक्षात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इससे यह ज्ञात हुआ कि प्रमुख रूप से **संयुक्त निकाय, धम्मपद, सुत्तनिपात, थेरगाथा** और **थेरीगाथा** आदि पालि के मुक्तक काव्य कहे जा सकते हैं। इसी अध्याय के दूसरे अनुच्छेद में प्राकृत और अपभ्रंश परम्परा के मुक्तक ग्रन्थों की समीक्षा की गई है, जिसमें जैन आगम साहित्य के मुक्तकों के अतिरिक्त **गाथासप्तशती** और **वज्जालग्गं** प्राकृत के प्रमुख मुक्तक ग्रन्थ सुनिश्चित होते हैं। इस अध्ययन से यह भी ज्ञात होता है कि प्राकृत के अन्य काव्य ग्रन्थों में भी अनेक मुक्तक गाथाएं उपलब्ध हैं। इस अध्याय के अन्त में संस्कृत के प्रमुख मुक्तक ग्रन्थों और अन्य भाषाओं के प्रमुख मुक्तक ग्रन्थों की भी समीक्षा की गयी है।

तृतीय अध्याय में पालि और प्राकृत भाषा में रचित विभिन्न ग्रन्थों में धर्म के विविध रूपों का विवेचन किया गया है। उनमें जब आगमिक परम्परा के साहित्य का अध्ययन करते हैं तो विशुद्ध रूप से धार्मिक मुक्तकों का स्वरूप भी स्पष्ट होता है।

इसमें से पालि व प्राकृत के आगम व लौकिक काव्यों में धार्मिक मुक्तकों का विषयवार चयन किया गया । ये धार्मिक मुक्तक किसी धर्म विशेष की बात नहीं करते हैं परन्तु धर्म को कैसे धारण किया जाय इसका प्रतिपादन करते हैं। जो मनुष्य अपने जीवनकाल में इन धार्मिक विचारपरक सुभाषितों को पढ़कर व सुनकर अपने जीवन में उतार लेता है, वह अपना धर्म सभी लोकों में प्रकाशित कर पुण्य अर्जित करता है।

पालि एवं प्राकृत के ग्रंथों में जिस प्रकार के धार्मिक कथनों का चयन किया गया है वे हैं- अप्रमाद, अहिंसा, अहंकार, त्याग, कर्म, कषाय विजय, कामभोगों पर विजय, तप, धर्म, धर्मदर्शन, ध्यान, नम्रता, क्षमा, अपरिग्रह, पुण्य, ब्रह्मचर्य, मृदुता, मंगलाचरण, शील, सत्य आदि। जैनागमों तथा पालि त्रिपिटक के ग्रंथों में प्रमाद त्याग के संबंध में अनेक स्थलों पर विस्तार से विवेचन प्राप्त होता है। अहंकार, क्रोध, प्रमाद, रोग और आलस्य शिक्षा के लिए बाधक हैं। अविनीत, स्वादु, क्रोधी और कपटी शिक्षा देने के योग्य नहीं होते। मनुष्य जन्म मिलना बड़ा दुर्लभ कहा गया है। पूर्वसंचित कर्मों के क्षय के लिए ही मनुष्य देह धारण करनी चाहिए। बोलने के पहले जो कुछ बोला जाय उस पर विचार कर लेना चाहिए। कभी ऐसी बात नहीं बोलनी चाहिए जिससे कलह बढ़े। झूठे और कठोर वचन से सदा दूर रहना चाहिए। जो अप्रमत्त होता है वह शीघ्र मोक्ष प्राप्त कर लेता है। जिन्हें तप, संयम, क्षमा और ब्रह्मचर्य प्रिय हैं वे स्वर्गलोक अथवा मोक्ष को प्राप्त होते हैं। जो बिना धर्माचरण किए परलोक जाता है वह अनेक व्याधियों से पीड़ित होकर अत्यंत दुःखी होता है।

नैतिक और आचारमूलक मुक्तक काव्यों में गौरवशाली जीवन व्यतीत करने के लिए शरीर की क्षणभंगुरता, सत्य, शम, दम, विवेक, विद्वत्ता, विद्या का महत्त्व, मनस्विता, तेजस्विता, भक्ति, विनय, क्षमा, दया, उदारता, शील, संतोष आदि विषयों का पालि प्राकृत के मुक्तक काव्यों में विस्तार से विवेचन किया गया है। इन काव्यों में सज्जन, दुर्जन, यश-अपयश, आत्मप्रशंसा, साहस, धैर्य, मित्रता, परोपकार, वीरता आदि का भी कथन किया गया है। वस्तुतः नीतिपरक मुक्तकों में शारीरिक, आत्मिक, सामाजिक व राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में निरूपण किया जाता है। मनुष्य के जिस व्यवहार से उसका स्वयं का हित तथा संसार का उपकार होता है, उसे आचार कहते हैं। वेदों और आगमों में जो धर्माचरण आदि का व्यवहार किया जाता है वही आचार है। आचरण ही परम धर्म है। **'आचारोपरमधर्मः'**।

पालि मुक्तकों में जहाँ प्रेम को दुखों का कारण, आसक्ति का माध्यम होने से लोग धर्म साधना में इसको बाधा मानकर प्रेम से दूर रहने का संकेत करते हैं वहीं प्राकृत मुक्तकों में प्रेम को श्रृंगार के माध्यम से अनेक कवियों ने इसका अपने ग्रंथों

में विस्तार से वर्णन किया है। रूप सौंदर्य को पाने के लिए प्रेम की आवश्यकता होती है। रूप के प्रति कवियों ने आसक्ति व्यक्त की है। प्रेम दो व्यक्तियों को एक सूत्र में बांधता है, लेकिन प्रेम को सदा एकरूप होना चाहिए। इस अध्याय के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि मानव जीवन के अनेक अनुभव हैं जो मनुष्य को पग-पग पर विभिन्न रूपों में शिक्षा प्रदान करते हैं। पालि और प्राकृत की मुक्तक गाथाएं पर्याप्त समृद्ध हैं।

शोध प्रबंध के **चतुर्थ अध्याय** में पालि-प्राकृत की समीक्ष्य मुक्तक गाथाओं का काव्यात्मक, भाषात्मक व तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इस अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि इन मुक्तकों का प्रमुख छंद गाथा छंद रहा है। यद्यपि इसके अतिरिक्त छंदों का प्रयोग मुक्तकों में हुआ है। इन मुक्तकों की काव्यात्मक सुषमा के कारण अलंकारों के उदाहरणों के रूप में प्राकृत मुक्तकों के काव्यशास्त्रीय रूप में प्रस्तुत किया गया हे। इस संबंध में कतिपय अलंकारों के उदाहरण शोध-प्रबन्ध में दिये गये हैं। इस अध्ययन से यह स्पष्ट हुआ है कि पालि-प्राकृत मुक्तकों में प्रायः सभी रसों का समावेश पाया जाता है। इनमें श्रृंगार रस के अतिरिक्त शांत और भक्ति रसों की प्रधानता है। इन समीक्ष्य मुक्तकों की भाषा प्रमुख रूप से महाराष्ट्री प्राकृत है। इनमें देशी शब्दों का प्रयोग भी पाया जाता है।

शोध-प्रबन्ध के **पंचम अध्याय** में पालि-प्राकृत के मुक्तकों का सांस्कृतिक दृष्टि से भी अध्ययन किया गया है। अध्ययन में प्रयुक्त मुक्तक गाथाएं विभिन्न कालों में लिखे गये पालि-प्राकृत ग्रन्थों की है। अतः इन मुक्तक गाथाओं की सांस्कृतिक सामग्री किसी एक समयावधि की नहीं है और न ही एक प्रकार की। फिर भी इन मुक्तकों में जो सामाजिक व सांस्कृतिक जीवन उपलब्ध होता है वह लोक जीवन के अधिक नज़दीक है। इस अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि संयुक्त परिवार में अनेक सदस्य प्रेम-भाव से रहते थे। गृहिणी परिवार की केन्द्र बन्दु थी। धार्मिक संस्कार परिवार में बने हुए थे। आर्थिक जीवन श्रम और कृषिकर्म पर निर्भर था। शिक्षा और कला के अन्तर्गत परम्परागत विषय सम्मिलित थे।

इस प्रकार इस शोध-प्रबन्ध में पालि-प्राकृत मुक्तक काव्यों के गहन अध्ययन द्वारा भारतीय साहित्य की एक स्वतंत्र विधा का विश्लेषण करने का प्रयत्न किया गया है तथा मुक्तकों के माध्यम से तत्कालीन काव्यशास्त्रीय अभिरुचि और संस्कृति की समीक्षा प्रस्तुत की गयी है।

- बी-१३२, सरोजिनी नगर, नई दिल्ली-२३

चिन्तन-कण

दिगम्बरत्व की मर्यादायें-एक चिन्तन

- श्री मनोहर मारवडकर

शोधादर्श-५६ में डॉ. अनंग प्रद्युम्न कुमार, रुद्रपुर, और श्री जमनालाल जैन, वाराणसी, के दो चिन्तनपरक आलेख पढ़े। सोच बहुत ही व्यवहारपरक होते हुए भी वास्तवकिता से उन्हें देखना अभीष्ट होगा।

विचारणीय प्रश्न हैं- दिगम्बर जैन मुनि निर्वस्त्र क्यों होते हैं? **मूलाचार** में इसकी क्या व्यवस्था है? क्या वह उस काल की ही आवश्यकता थी? आज की नहीं?

वास्तविकता तो यह है कि नग्नता यह उनकी सामायिक संयम से सहज में उत्पन्न हुई है। प्रदर्शन के लिये नहीं। जब यह क्रिया निर्वस्त्र होने की प्रदर्शन के लिये होती है तब अवश्य ही वह प्रवृत्ति मूलक होती है और ऐसा वर्तमान में कुछ अंशों में देखा ही जाता है। उस पर आलोचनायें भी होती रहती हैं। पर आलोचनाओं का वास्तविक नग्नत्व से कोई संबंध नहीं है। वास्तविक नग्नत्व एक सहज स्वाभाविक दशा है।

जब आत्मस्वभाव में अर्थात् ज्ञायकभाव में साधक आत्मविभोर तथा निमग्न होकर उसमें प्रतिअन्तर्मुहूर्त में गोते खाने लगता है, तब उसे वस्त्र पहिनने या ओढ़ने की तथा छोड़ने की कब फुर्सत मिलती है?

मूलाचार का संदर्भ तो दिया गया पर उसी समय में लिखे गये **प्रवचनसार** का भी संदर्भ दिया जाता तो अच्छा होता। उसमें स्पष्ट है तथा अन्य ग्रंथों से भी स्पष्ट है कि सातवां गुणस्थान पहले आता है वह भी सामायिक संयम की अवस्था में जबकि ऐलक पद की एक लंगोट भी बोझ महसूस होने लगती है। आत्मानंद का जोर सामायिक संयम की आनंदानुभूति के प्रभाव से इतना बढ़ जाता है कि सातवें से बाहर छठवें गुणस्थान में प्रमाद के बल से आ जाने पर भी वहां रहने का उनको आनंद ही नहीं आता। वह प्रमाद की अवस्था है जब पांच महाव्रत, पांच समितियां, पांच इंद्रियों के रोध, छह आवश्यक और सात क्रियायें यह प्रकट रूप में प्रवृत्ति रूप में दीखती हैं। अप्रमत्त संयम सातवें गुणस्थान में वे जब शुद्धोपयोग के आनंद के झूले में झूलते हैं, तब ये मर्यादायें अट्ठाईस मूलगुणों की प्रकट या व्यक्त रूप प्रवृत्ति में नहीं रहती। उस समय में अव्यक्त रूप से रहती हैं। उस अकेले सामायिक संयम के विकल्प के रूप में यह प्रगट व्यक्तता में आती है।

- 'स्वधर्म'-५७ (ब), महावीर नगर, नागपुर-९

दिगम्बरत्व की मर्यादा वर्तमान परिप्रेक्ष्य में

-सुश्री लीना विनायिकया

शोधादर्श-५६ के जुलाई २००५ के अंक में डॉ. अनंग प्रद्युम्न कुमार द्वारा लिखित 'दिगम्बरत्व की मर्यादा' लेख हाल ही में मेरे पढ़ने में आया। उसी अंक में 'नग्नत्व और मूलगुण' नामक श्री जमनालाल जैन द्वारा लिखित लेख भी पढ़ा।

दोनों लेख विचारणीय एवं चिन्तनीय हैं। जो बुद्धिवादी तथा जैनधर्म के सिद्धांत मानने वाले लोग हैं, मुझे पूरा विश्वास है, उन सभी के मत इसी प्रकार होंगे।

'दिगम्बरत्व की मर्यादा' में पहला प्रश्न दिगंबर साधु-चर्या पर उठाया है। उससे मैं बिल्कुल सहमत हूँ। दिगंबर मुनि अगर शहरों में आते जाते हैं तो उन्हें एक वस्त्र पहनना ही चाहिए। समय के हिसाब से बदलाव तो आना ही चाहिए। जैसे 'नग्नत्व और मूलगुण' इस लेख में श्री जमनालाल जी जैन ने भी यही लिखा है कि भगवान महावीर के पश्चात यानी विगत ढाई हजार वर्षों में समाज हित की दृष्टि से नग्नत्व कितना उपयोगी और सार्थक रहा यह विचारकों के लिए चिन्तन का विषय है। क्या केवल निर्वस्त्र या नग्न रहने मात्र को आदर्श स्थिति कहा जा सकता है?

दिगम्बर, मर्यादा में दूसरा प्रश्न है कि क्या दिगम्बर परंपरा ने श्वेताम्बर परम्परा में मान्य आगम साहित्य को सर्वांगतः खारिज कर बुद्धिमानी की?

इस प्रश्न के सम्बन्ध में मैं कहना चाहूँगी कि **उत्तराध्ययन** में कहा है कि **पलस सम्मिक्खड धम्मं** याने धर्म की समीक्षा प्रज्ञा याने बुद्धि से करो। इसलिए दिगम्बर हो या श्वेताम्बर साहित्य या आगम हो उनके ऊपर दोनों सम्प्रदाय को विचार करना चाहिए। उनको पढ़ना चाहिए। तत्व के हिसाब से दोनों साहित्य कहीं भी कम नहीं हैं। आध्यात्मिक ज्ञान किसी भी ग्रंथ से मिले वह लेने में कोई गलत बात नहीं है।

श्री जमनालाल जी जैन ने जो बातें अपने लेख में लिखी हैं उनसे भी मैं पूर्ण रूप से सहमत हूँ। जैसे एकाग्रता या स्नान न करना, दांत न धोना को महत्व दिया गया है या मोही मुनि से निर्मोही गृहस्थ श्रेष्ठ है... तपस्या का महत्व श्रेष्ठ है। ये सभी बातें आजकल की पीढी जानती है, मानती भी है। लेकिन कुछ हमारे ही मुनि या श्रावक भी एकांतवादी होने से ये बातें कभी मानते नहीं हैं।

अनेकांतवादी उन्हें ही कहते हैं जो 'भी' में विश्वास करते हैं। कुल दिगम्बर साहित्य वाचनीय, चिंतनीय है तो श्वेताम्बर साहित्य भी ऐसा है, सोचें तो श्वेतांबर, दिगम्बर यह भेद ही खत्म हो जाएगा।

मैंने तो यहां तक देखा है कि कोई एक दिगम्बर मुनि वस्त्ररहित तो हैं लेकिन रहते हैं बड़े-बड़े लोगों के बंगले में, उनका कहीं कुछ प्रोजेक्ट चालू है उसके लिए किसी भी प्रकार से वह धन इकट्ठा करते हैं। फिर वह धन कहीं से भी प्राप्त हो याने काला पैसा हो या गुटखा, दारू में की कमाई हो उन्हें उससे कोई परहेज नहीं है, उनका स्रोत कहीं से हो इसका इनके साथ कुछ लेना देना नहीं है।

जैनधर्म में व्यक्तिपूजा निषिद्ध है लेकिन ये खुद अपनी ही आरती की बोली लगवाते हैं और जय जय-- (मुनि का नाम) और उससे भी पैसा जोड़ते हैं।

कितने ही बहनों से खाना बनाने के लिए (चौका लगवाते हैं) और २००-२५० लोगों के बीच में खाना सबको दिखा के खाते हैं। यहाँ तक सुना है कि उनकी फर्माइश भी रहती है। तो यह सब बातें कहाँ तक सही हैं? ऐसे साधु के पीछे अंधश्रद्धालु श्रावक भी होते हैं। उनको जैन तत्वज्ञान की कितनी जानकारी है पता नहीं। इन सब बातों का भी विचार होना आवश्यक है।

- १८ सी, सकलनगर, औंध,
बाणेर रोड, पुणे-६

वर्तमान परिस्थितियों में साधु का नग्न रहना उचित या अनुचित

- डॉ. अनिल कुमार जैन

पं. रतनलाल जी बैनाड़ा का एक लेख **'तीर्थंकर वाणी'** के अक्टूबर २००५ अंक में प्रकाशित हुआ है जिसका शीर्षक है- 'दिगम्बरत्व की वास्तविकता, इतिहास एवं प्रमाण'। इसे **'जैसवाल जैन दर्पण'** (आगरा) से साभार उद्धृत किया गया है। लेख बहुत ही महत्वपूर्ण है। दिगम्बरत्व की प्रशंसा प्राकृतिक चिकित्सा विज्ञान में भी की गई है।

इस लेख को पढ़ने के बाद कुछ बिन्दु मस्तिष्क में आये हैं, मैं उन्हें अन्य विद्वानों के साथ बाँटना चाहता हूँ। यह सही है कि प्राचीनकाल में जैन साधु ही नहीं बल्कि जैनेतर साधु भी नग्न रहना पसंद करते थे। जैसा कि उपरोक्त लेख से स्पष्ट है कि मुसलमान, ईसाई व हिन्दू साधु भी ऐसा करते थे। लेकिन क्षेत्र और काल के प्रभाव में प्रायः सभी जैनेतर साधुओं ने नग्न रहना बन्द कर दिया है। कुछ हिन्दू नागा साधु अब भी नग्न रहते हैं, लेकिन वे अब स्थान-स्थान पर भ्रमण करने के बजाय

एक स्थान पर ही रहते हैं। जैनों में भी श्वेताम्बर मूर्तिपूजक व स्थानकवासी तेरापंथी साधु कपड़े पहनते ही हैं। मात्र दिगम्बर जैन साधु ही नग्न रहते हैं तथा एक स्थान से दूसरे स्थान पर भ्रमण करते रहते हैं। यहाँ एक बात यह विचारणीय है कि देश और काल की परिस्थिति देखते हुए क्या दिगम्बर साधुओं को भी नग्न रहते हुए विहार करना उचित है? कुछ विद्वानों के उत्तर तो मुझे ज्ञात हैं। उनका कहना है कि पंचम काल के अन्त तक दिगम्बर साधु रहेंगे। अतः उनके नग्न रहने और विहार करने में कोई बाधा नहीं है।

लेकिन क्या आज की चकाचौंध एवं ग्लैमर युक्त दुनिया में यह उचित है? इस मुद्दे पर गम्भीरता पूर्वक विचार होना चाहिए। पहले नग्न साधु जंगलों में रहते थे, लेकिन आज जंगलों का अभाव है तथा साधु अब बस्तियों में रहते हैं, बड़े-बड़े शहरों तथा महानगरों में रहते हैं। इन महानगरों में पश्चिमी सभ्यता का खुला प्रदर्शन भी होता है। मिस वर्ल्ड प्रतियोगिता, कैट रॉक, तथा फैशन-शो आये दिन के कार्यक्रम हैं। टैलीविजन पर कामुकता युक्त धारावाहिकों का प्रसारण होता ही रहता है। इस प्रकार की परिस्थिति में साधुओं में भी कदाचित् दोष लग सकता है। और यदि हम यह मानें कि ये साधु काम, क्रोध से मुक्त हो गये हैं तथा ये सब परिस्थितियाँ उनका कुछ बिगाड़ नहीं सकतीं, तब भी हमें इस बात पर भी विचार करना चाहिए कि चलो माना कि ये साधु काम, क्रोध से मुक्त हो गये हैं, लेकिन आज के ग्लैमर युक्त संसार की आम जनता तो और अधिक उसमें लिप्त हो गई है। उनके विकार भाव तो हैं ही। शहरों और महानगरों में नग्न साधु भ्रमण कर आम जनता के विकारभावों को उत्तेजित करने में माध्यम क्यों बनें? यदि उन्हें नग्न रहना है तो शहरों तथा महानगरों में भ्रमण बन्द करना चाहिए। और यदि उन्हें इस प्रकार का भ्रमण करना है तो मात्र ऐलक अवस्था तक ही त्याग करना चाहिए। जब कभी एक साधु नग्न अवस्था में अकेला या किसी महिला या किसी एक आर्यिका के साथ महानगर या शहर में भ्रमण कर रहा होता है तो वह मात्र हँसी का पात्र ही बनता है। इससे जैनधर्म का प्रचार तो दूर जैन धर्म का मजाक बनता है।

आज लगभग एक हजार दिगम्बर नग्न साधु हैं। ये सभी साधु काम और क्रोध से मुक्त हो चुके हैं, यह हममें से कोई नहीं कह सकता है। यह तो सर्वज्ञ केवलज्ञानी ही जानते हैं। लेकिन अनेक साधु/सन्तों के विभिन्न किस्से यह मनवाने

को हमें विवश करते हैं कि वे इस अवस्था से अभी कोसों दूर हैं। क्रोध, मान, माया, लोभ सभी उनमें कूट-कूट कर भरा है। अभी उनमें अपनी प्रसिद्धि की चाह तो है ही, उनके अपने-अपने प्रोजेक्ट हैं जिन्हें पूरा करने के विकल्प (आर्त और रौद्र भी) में वे व्यस्त रहे आते हैं; धन संग्रह की भावना (प्रोजेक्ट पूरा करने के लिए ही सही) बनी ही रहती है। जब यह सब कुछ है ही तो नग्न रहकर आम जनता के बीच नग्नता का प्रदर्शन करने का क्या प्रयोजन है?

हम पहले भी अनेक बार लिख चुके हैं, आज जितने भी दिगम्बर नग्न साधु हैं, वे रहे आयें। उन्हें कपड़े पहनने को नहीं कहा जा रहा है। हमारा तो उनसे करबद्ध सदा यह ही निवेदन रहता है कि वे नये दिगम्बर नग्न साधु न बनायें, उन्हें ऐलक तक ही रहने दें। क्षुल्लक और ऐलक के व्रत-नियम भी कम नहीं हैं यदि कोई उन्हें ठीक तरह से पालन करे तो। आज नहीं तो कल, इस विषय को गम्भीरता से लेना होगा। यदि दिगम्बर समाज की इज्जत भारतीय समाज में बनाये रखनी हैं, तो हमें विचार करना ही होगा। जिस गति से विश्व में, देश में, समाज में परिवर्तन हो रहे हैं, उसे ध्यान में रखते हुए हमें शीघ्र ही कोई कारगर कदम उठाना होगा। गांधी जी ने भी इन बातों को ध्यान में रखते हुये नग्न साधुओं को भ्रमण न करने की अपील की थी।

अपने समय के धर्मनिष्ठ शास्त्रज्ञ विद्वान पं. गोपालदास बरैया ने समय की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए अपने शिष्यों को सद्गृहस्थ बनकर रहने और यदि व्रत धारण करने के भाव हों तो दसवीं प्रतिमा तक ही सीमा रखने का परामर्श दिया था और उसे स्वीकार कर उनका कदाचित् कोई भी शिष्य मुनि दीक्षित नहीं हुआ, कुछ बालब्रह्मचारी अवश्य रहे।

- बी/२६, सूर्यनारायण सोसायटी,
साबरमती, अहमदाबाद-३८०००५

———

गोम्मटेश की स्थापना कथा

- सिद्धान्ताचार्य पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री

आजकल सर्वत्र श्रवणबेलगोला के गोम्मट स्वामी के महामस्तकाभिषेक की ही चर्चा है। इस मूर्ति की प्रतिष्ठा एक हजार वर्ष पूर्व गंगनरेश राचमल्ल के महामात्य तथा सेनापति चामुण्डराय ने की थी। चामुण्डराय का घरेलु नाम गोम्मट था। इसी से भगवान बाहुबलि गोम्मट स्वामी के नाम से प्रसिद्ध हो गये। इतना ही नहीं सिद्धांत चक्रवर्ती आचार्य नेमिचन्द्र ने **षट्खण्डागम** का सार लेकर जो महाग्रन्थ रचा उसको भी उन्होंने **गोम्मटसार** नाम दिया, क्योंकि महाग्रन्थ चामुण्डराय के निमित्त से रचा गया था। आचार्य नेमिचन्द्र ने अपने **गोम्मटसार** के अन्त में चामुण्डराय का उल्लेख गोम्मट नाम से ही किया है।

गोम्मटसार जीवकाण्ड के अन्त में उन्होंने लिखा है 'सो राओ गोम्मटो जयउ' वह राजा गोम्मट जयवन्त हो।

यह जो प्रवाद है कि नेमिचन्द्र चामुण्डराय के गरु थे और उन्होंने मूर्ति की प्रतिष्ठा की थी, यह ठीक नहीं है। यह बात **गोम्मटसार जीवकाण्ड** की अन्तिम गाथा से ही स्पष्ट हो जाती है। यथा-

अज्जज्ज सेण गुणगणसमूह संधरि अजिय सेणगुरु।
भुवणगुरु, जस्स गुरु सो राओ गोम्मटो जयऊ।।

अर्थात्- आर्य आर्यसेन के गुणों के समूह को धारण करने वाले अजितसेन जिसके गुरु हैं वे राजा गोम्मट जयवन्त हों।

अतः चामुण्डराय के गुरु तो अजितसेन ही थे। आचार्य नेमिचन्द्र भी उनके गुरुस्थानीय थे। उन्होंने अपने **गोम्मटसार कर्मकाण्ड** के अन्त में चामुण्डराय के द्वारा स्थापित मूर्ति का, उनके द्वारा निर्मापित जिन मन्दिर का और इन्द्रनीलमणि की मूर्ति का उल्लेख करते हुए चामुण्डराय का गुणगान किया है। ऐसे धर्म प्रेमी जिन शासन भक्त राजपुरुष की प्रशंसा कौन नहीं करेगा जिसने जिनशासन की प्रभावना का इतना बड़ा कार्य किया।

आज से चालीस वर्ष पूर्व काका कालेलकर ने गोम्मटस्वामी की मूर्ति के दर्शन करने के पश्चात् उससे प्रभावित होकर कई लेख लिखे थे। उसमें मूर्ति की स्थापना की पूरी कथा उन्होंने दी थी कि किस प्रकार चामुण्डाय ने अपनी माता की प्रतिज्ञा पूर्ण करने के लिये इस मूर्ति का अनुसंधान किया। उनकी माता को स्वप्न हुआ था कि मूर्ति किसी झाड़ झंखाड़ में छिपी है। उन्होंने उसके दर्शन किये बिना अन्न-जल ग्रहण न करने का नियम लिया। तब चामुण्डराय अपने लश्कर के साथ मूर्ति की खोज में निकले। उनसे किसी ने कहा या उन्हें स्वप्न हुआ कि चन्द्रगिरि पर्वत पर खड़े होकर सामने स्थित विन्ध्यगिरि पर सोने के वाण छोड़ने से मूर्ति प्रकट होगी। तब उन्होंने ऐसा ही किया और वर्तमान मूर्ति प्रकट हुई।

यह कथा इस बात की सूचक है कि मूर्ति इतनी मनोहर है कि उसे कोई मनुष्य निर्मित कल्पना नहीं कर सकता। पूरा पहाड़ काटकर उसमें से मूर्तिकार ने वर्तमान मूर्ति को प्रकट किया है। एक एक अंग मानो सांचे में ढला है। इतनी विशाल मूर्ति का इतना सानुपातिक निर्माण आश्चर्यजनक है। मूर्ति के मुख पर विषाद की झलक है मानो वह संसार की दशा पर खिन्न है। आगे के भाग में युवत्व क्रीड़ा करता है तो पृष्ठ भाग में बचपन की छाया प्रतीत होती है। जिनकी आस्था मूर्ति पूजा पर नहीं है उनसे हमारा अनुरोध है कि वे एक बार गोम्मट स्वामी की मूर्ति के दर्शन अवश्य करें।

मूर्ति नग्न है। इस नग्नता पर काका साहब ने जो भाव व्यक्त किये थे वे स्वर्णाक्षरों में उत्कीर्ण करने योग्य हैं। उन्होंने लिखा था कि **मूर्तिकार चाहता तो मूर्ति की नग्नता को माधवी लता के पत्तों से ढाक सकता था। किन्तु तब तो कला की हत्या ही हो जाती। नग्नता में अश्लीलता नहीं है, अश्लीलता हमारे अन्तस्तल में है जिसे कृत्रिमता पसन्द है प्राकृतिकता नहीं।**

इस मूर्ति के निर्माण की तरह उसकी प्रतिष्ठा की भी कथा प्रवर्तित है। मूर्ति की प्रतिष्ठा के समय जब उसके अभिषेक का आयोजन किया गया तो एक गरीब स्त्री नारियल की प्याली में घर से दूध लेकर आई और अभिषेक के दूध में अपना दूध सम्मिलित करने का आग्रह करने लगी। किन्तु इतने बड़े राजकीय आयोजन में उसकी कौन सुनता। फलतः जब अभिषेक हुआ तो अभिषेक का दूध नाभि से नीचे नहीं उतरा और अभिषेक पूरा नहीं हो सका। तब किसी ने उस वृद्धा की ओर

ध्यान दिया और उसका दूध अभिषेक में सम्मिलित करके अभिषेक किया गया तो सर्वांग अभिषेक हुआ। इस पर से चामुण्डराय को पछतावा हुआ और उन्होंने उस स्त्री की मूर्ति गोम्मट स्वामी की मूर्ति के सामने द्वार पर स्थापित कर दी। उसके हाथ में नारियल की प्याली है। उसे गुल्लकायजी कहते हैं।

हमारे देश में देवी-देवताओं के प्रति आज भी ऐसी भक्ति है कि ज्ञानी और विवेकी जन भी उस मूढ़ता के प्रवाह में बह जाते हैं। वे यह कल्पना ही नहीं कर सकते कि मानव हृदय में ऐसी भक्ति हो सकती है जो चमत्कारिणी होती है।

आजकल भगवान् बाहुबलि पर बहुत सी पुस्तकें हमें प्राप्त हुईं। उसमें उस वृद्धा के द्वारा उस मूर्ति का अभिषेक कराया गया है तथा नेमिचन्द्राचार्य के मुख से यह कहलाया गया है कि यह स्त्री कुष्माण्डिनी देवी हे।

अभिषेक जन्म कल्याणक का ही प्रतिरूप है। अभिषेक पाठ में आता है- 'इन्द्रोऽहं' इत्यादि। अर्थात् अभिषेक कर्ता अपने को इन्द्र मानकर अभिषेक करता है और जिनजन्माभिषेक इन्द्र ही करता है, इन्द्राणी नहीं करती यद्यपि वह बालक भगवान को प्रसूतिगृह से लाकर इन्द्र को सौंपती है। उसका इतना ही नियोग है।

स्त्री पर्याय की सफलता जिनाभिषेक से नहीं, जिन भक्ति से है। दिगम्बर परम्परा में अभिषेक का महत्व नहीं रहा है। मुनिदीक्षा होने के साथ ही जल स्नान वर्जित हो जाता है। बाल भगवान का अभिषेक पृथक् वस्तु है किन्तु भगवान बनने पर उसका महत्व समाप्त हो जाता है। उपवास के दिन श्रावक तक के लिये स्नान का निषेध आगम में है क्योंकि स्नान भी श्रृंगार का ही एक अंग है। हां, बाहुबलि भगवान की विशाल मूर्ति की बात जुदी है उसका प्रतिदिन अभिषेक सम्भव नहीं है। अतः केवल चरणों का ही प्रक्षालन संभव है। धूप में निरावरण खड़ी है। अतः बारह वर्षों में एक बार उसका अभिषेक चिक्कण पदार्थों से होना आवश्यक है जिससे पाषाण में खिरन न हो और मूर्ति स्थायी बनी रहे। यह मूर्ति विश्व के महान आश्चर्यों में गिनी जाती है। धन्य है वह कलाकार जिसने उसका निर्माण किया और धन्य है चामुण्डराय। हमें भी उनका दर्शन करके अपने जीवन को सफल बनाना चाहिये। जिन भक्ति से ही मानव पर्याय की सफलता है।

(वीर का गोम्मटेश अंक, २२ फरवरी, १९८१)

गोम्मट मस्तकाभिषेक

- श्री अंशु जैन 'अमर'

कर्णाटक राज्य के हासन जनपद का चेन्नाराय पत्तन ताल्लुका स्थित 'श्रवणबेलगोल'। सम्पूर्ण विश्व की नज़रें भारतवर्ष जैसे बहुधर्मी, किन्तु धर्म-निरपेक्ष देश के इस केन्द्र पर स्थिर और एक अद्‌भुत दृश्य का साक्षी बनने को व्यग्र। कला के एक अप्रतिम स्वरूप को नत मस्तक अरबों मन-मस्तिष्क। ८ फरवरी, वर्ष २००६ ई. अवसर-गोम्मटेश्वर बाहुबली स्वामी की १०२५ वर्ष प्राचीन भव्य प्रतिमा का 'महामस्तकाभिषेक'। विश्व इतिहास का विशालतम एवं इस सहस्राब्दि का प्रथम 'महामस्तकाभिषेक'।

विडम्बना देखिये, अनीश्वरवादी-धर्म, अति सामान्य प्राणी तक को तीर्थंकरत्व, मूलतः मूर्ति-पूजा अकल्पनीय। फिर भी, ऐसी मूर्ति की कल्पना, जो अकल्पनीय, लेकिन साकार मूर्त रूप में। और वह भी एक तीर्थंकर की न होकर एक तपस्वी की। निःसंदेह यह जैन-धर्म में कर्म एवं आचरण की सर्वोपरिता को इंगित करता है।

अद्वितीय कलाकृति- प्रतिमा समुद्रतल से ३२८८ फुट तथा भूतल से ४३८ फुट ऊँचाई पर अत्यन्त विशालकाय ५७ फुट ऊँची होने के बावजूद मूर्तिकला एवं जैन प्रतिमा विज्ञान की कसौटी पर एकदम खरी। मूर्ति ग्रे रंग की ग्रेनाइट चट्टान को तराशकर एकाश्म निर्मित की गई है। मूर्ति उत्तराभिमुखी एवं जंघा से ऊपर आश्रयविहीन व स्वतंत्र है। प्रतिमा की दिगम्बर खड्‌गासन कायोत्सर्ग मुद्रा, सर्प-विवर और जंघाओं से भुजाओं तक पत्रयुक्त लिपटी लताएं बाहुबली स्वामी के द्वारा जिन-साधना के चरम स्वरूप घोर तप को इंगित करती हैं। आकर्षक देह-यष्टि, शान्त मुख-मस्तक, विस्तृत वक्षस्थल, दृढ़ चरण, बलिष्ठ आजानुलम्ब भुजायें, पुष्ठ नितम्ब एवं स्पष्ट नख-केशों को शिल्पी ने अत्यन्त बारीकी से उकेरकर भरपूर यौवन भरते हुए प्रथम जिन-कामदेव के रूप-सौन्दर्य को द्विगुणित कर दिया है। अर्धोन्मीलित नेत्र, नासाग्रदृष्टि, मन्द स्मित एवं मुख पर अद्‌भुत सौम्यता-वीतरागता-निस्सारता ने तो मूर्तिकार की उत्कृष्ट-कला को भव्यता से दिव्यता में परिणत कर दिया है। इसीलिये कला-मर्मज्ञ इतिहास-मनीषी डॉ. ज्योति प्रसाद जैन ने इसे विश्व के महान आश्चर्यों में से एक माना है-

"प्रतिबिम्ब मूर्ति विज्ञान और रूप-शिल्प की अद्वितीय कलाकृति है, जो अपनी मौलिकता, विशालता, सादगी, मनोज्ञता एवं सुस्थित वीतराग ध्यानस्थ मुद्रा के लिये विश्व के सर्वोपरि आश्चर्यों में परिगणित है।'[१]

सुप्रसिद्ध विद्वान फर्ग्यूसन[२], एम.एच. कृष्णा[३] एवं वालहाउॅस आकार की दृष्टि से मूर्ति का साम्य मिस्र की प्रतिमाओं से करते हैं-

"Truly Egyptian in size and unrivalled throughout India as detached work...."[४]

ऐसी विशालकाय मूर्ति के अंग-प्रत्यंग का आश्चर्यजनक सानुपातिक निर्माण जहां एक ओर आगंतुकों को अपनी ओर आकर्षित करता है वहीं उन्हें लौटते समय बरबस पीछे मुड़-मुड़कर देखने को बाध्य भी करता है। इसीलिए सुप्रसिद्ध इतिहासकार विन्सेंट स्मिथ ने अपनी पुस्तक History of Fine Arts in India and Ceylon (पृ. २६८) में लिखा है-

"Undoubtedly the most remarkable of Jaina statues and the largest free standing statue in Asia... set on the top of an eminence is visible for miles round."[५]

प्रतिमा का निर्विकार दिगम्बरत्व मूर्तिकार के कला-कौशल की चरम श्रेष्ठता को प्रदर्शित करता है। काका साहब कालेलकर ने तो यहाँ तक लिखा है कि-

"मूर्तिकार चाहता तो मूर्ति की नग्नता को माध्वी लता के पत्तों से ढांक सकता था। किन्तु तब तो कला की हत्या ही हो जाती। नग्नता में अश्लीलता नहीं है, अश्लीलता तो हमारे अन्तस्तल में है जिसे कृत्रिमता पसन्द है, प्राकृतिकता नहीं।"[६]

विन्ध्यगिरि पर सुत्तालय के प्रवेश द्वार के बायीं ओर एक पाषाण-शिला पर (११८० ई. के लगभग) एक काव्यात्मक शिलालेख संख्या-३३६ उत्कीर्ण है, जिसमें कन्नड महाकवि बोपन्न ने मूर्ति की काव्यात्मक प्रशंसा करते हुए कहा है- "जब मूर्ति आकार में बहुत ऊँची एवं विशाल होती है तब उसमें प्रायः सौन्दर्य का अभाव रहता है। यदि विशाल भी हुई और उसमें सौन्दर्य बोध भी हो तो उसमें दैवी प्रभाव का अभाव खटकता है। लेकिन यहां तीनों के सम्मुच्चय से संसार द्वारा पूजित गोम्मटेश्वर की छटा अपूर्व हो गई है।'[७]

निर्माण-कथा- साहित्यिक स्रोतों के आधार पर ज्ञात विभिन्न कथाओं एवं किंवदन्तियों से इस भव्य प्रतिमा, उसके निर्माण, उद्देश्य, समय एवं प्रतिष्ठा आदि के विषय में पर्याप्त जानकारी प्राप्त होती है, जिसके अनुसार-

गोम्मट बाहुबली प्रथम जैन तीर्थंकर ऋषभदेव की द्वितीय रानी सुनन्दा से उत्पन्न पुत्र थे। वे तक्षशिला के राजा थे[८] और तक्षशिला उनकी राजधानी।[९]

ऋषभदेव की शत-पुत्रवती प्रथम महारानी यशस्वी से उत्पन्न पुत्र 'भरत' (जिनके नाम पर ही इस देश का नाम भारतवर्ष पड़ा, एक मान्यतानुसार) उनके भाई एवं चक्रवर्ती राजा थे। बाहुबली के द्वारा अधीनता अस्वीकार करने पर भरत ने विशाल सेना के साथ तक्षशिला पर आक्रमण कर दिया। दोनों भाइयों के मध्य हुए दृष्टि-युद्ध, जल-युद्ध एवं मल्ल-युद्ध में बाहुबली विजयी हुए। हतोत्साहित भरत ने क्रोधावेश में अचानक बाहुबली पर दिव्यचक्र से प्रहार किया। सगोत्रीय एवं चरमशरीरी होने के कारण दिव्य-चक्र वापस लौट गया। इस घटना ने बाहुबली को झकझोर दिया और वे सारा राज-पाट त्याग घोर तप कर केवलज्ञानी बने। तीर्थंकर न होते हुए भी, उनके अप्रतिम तप-त्याग-साधना के कारण जनमानस उन्हें भगवान ही मानने लगा।

प्रथम मोक्षगामी प्रथम कामदेव एवं केवली बाहुबली के इसी आदर्श-स्वरूप को जन-जन का प्रेरक बनाने के उद्देश्य से उनके भाई भरत चक्रवर्ती ने ५२५ धनुष प्रमाण पन्ना की अतिशय प्रतिमा निर्मित करवाकर पोदनपुर में स्थापित करवायी।[१०]

कालांतर में गंग नरेश राचमल्ल चतुर्थ (९७६-९८४ ई.) की राजसभा में एक बार प्रधान सेनापति एवं महामात्य श्री चामुण्डराय ने किसी श्रेष्ठि अथवा जैन मुनि के मुख से पोदनपुर की अतिशय मूर्ति के बारे में सुना और अपनी माता काललदेवी से मूर्ति के विषय में जिज्ञासा की।[११] धर्मनिष्ठ माँ ने अतिशय महिमा सुनते ही मूर्ति के दर्शन होने तक व्रत रखने की प्रतिज्ञा ले ली। मातृ भक्त चामुण्डराय माँ काललदेवी, धर्मपत्नी अजितादेवी और आचार्य गुरु नेमिचन्द्र के साथ मूर्ति की दर्शन-यात्रा पर चल दिये। कथानुसार चन्द्रगिरि पर्वत पहुंचने पर चामुण्डराय, माता एवं आचार्य नेमिचंद्र तीनों व्यक्तियों को स्वप्न में उस स्थान की शासनदेवी कुष्माण्डिनी देवी ने निर्देश दिया कि 'कुक्कुट सर्पों से आगे का मार्ग अवरुद्ध होने के कारण मूर्ति के दर्शन असंभव है, अतः इसी स्थान से स्वर्ण-बाण छोड़ो, वह जहाँ टकरायेगा वहीं मूर्ति के दर्शन होंगे।' तब गुरु आचार्य नेमिचन्द्र की आज्ञानुसार चामुण्डराय ने चन्द्रगिरि पर्वत (पूर्व नाम कटवप्र या कालबप्प या चिक्कबेट्ट अर्थात् छोटा पर्वत) से ही दक्षिण दिशा में स्थित पास वाली विशालकाय पहाड़ी विन्ध्यगिरि पर्वत (इन्द्रगिरि या दोड्डयबेट्ट अर्थात् बड़ा पर्वत) पर स्वर्ण-बाण छोड़ा और एक मूर्ति का रेखाचित्र उभरकर सामने आ गया। एक कथानुसार लंका विजय के पश्चात् जब भगवान श्री

रामचन्द्र यहाँ आये थे तब उनके पास लंका नरेश रावण द्वारा निर्मापित बाहुबली स्वामी की एक अत्यन्त मनोहारी प्रतिमा थी जो उनके प्रस्थान के समय यहाँ अचानक स्थिर हो गयी। तब श्री रामचंद्र जी ने उस सुन्दर मूर्ति की अनुकृति इस विन्ध्यगिरि पर्वत-शिला पर अपने धनुष से खींच दी थी। कदाचित् चामुण्डराय के बाण के आघात से प्रकटित रेखांकन श्री रामचन्द्र जी द्वारा खींचा गया रेखाचित्र ही था।[१२]

चामुण्डराय ने प्रधान शिल्पी अरिष्टनेमि को बुलाकर प्रकटित रेखांकन के अनुरूप सुन्दर एवं भव्य प्रतिमा निर्मित करने का निर्देश दिया। लोभी शिल्पी ने सुअवसर देखते हुए निर्माण के दौरान उतरने वाली पाषाण-रज के वजन के बराबर स्वर्ण पारिश्रमिक के रूप में दिये जाने की शर्त रखी, जिसे चामुण्डराय ने सहर्ष स्वीकार कर लिया। मूर्ति का निर्माण प्रारम्भ हुआ। जब पारिश्रमिक स्वर्ण की पहली खेप लेकर शिल्पी अपन माँ के पास पहुँचा लोभवश स्वर्ण उसके हाथों में जड़ हो चुका था। यह देख शिल्पी और माँ बहुत घबराये। माँ आचार्य श्री के पास पहुँची। आचार्यश्री के उपदेशानुरूप माँ ने लौटकर पुत्र को समझाया- "दोनों पुत्रों के भावों के अन्तर को समझो, पुत्र! चामुण्डराय प्रस्तुत कर रहा है उदाहरण मातृ-भक्ति का, धर्म-प्रभावना का, त्याग का। माता की इच्छा पूर्ति हेतु भगवान बाहुबली की मूर्ति के निर्माण के लिये वह धन को तृणवत समझ रहा है। उसके प्रति त्याग का भाव रख रहा है और उसके विपरीत तुम्हारा उदाहरण है लोभ का, अधिक से अधिक स्वर्ण व धन-संचय कर लेने का। स्वर्ण ने नहीं यथार्थ में तुम्हारे मन के लोभ तथा विकार ने मन तथा हाथों को जड़ कर दिया है, स्वर्ण का मोह तुम्हारे हृदय से हाथों में उतर आया है और उससे स्वर्ण भी तुम्हारे हाथों से छूट नहीं पा रहा है।"[१३]

माँ की बात सुनकर शिल्पी का लोभ विगलित हो गया और हाथ से स्वर्ण भी मुक्त हो गया। उसके बाद शिल्पी के हाथ में अद्वितीय कला-कौशल जाग उठा और चिरस्मरणीय कृति अवतरित हो उठी।

भव्य प्रतिमा की प्रतिष्ठा का आयोजन भी भव्य होना था। गंग-नरेश और आचार्य अजितसेन की उपस्थिति में तथा आचार्य नेमिचन्द्र के कुशल निर्देशन में प्रतिमा की प्रतिष्ठा एवं १००८ कलशों से प्रथम महामस्तकाभिषेक का भव्य आयोजन चैत्र शुक्ल पंचमी, रविवार, कुम्भलगन, मृगशिरा नक्षत्र, ६०० कल्कि संवत्[१४] अर्थात् १३ मार्च, ९८१ ई. को किया गया था।[१५] मूर्ति निर्माता चामुण्डराय ने सर्वप्रथम अभिषेक हेतु कलश ढारा, लेकिन अभिषेक-द्रव्य नाभि से नीचे उतर ही नहीं रहा

था। यह देख गंगनरेश, चामुण्डराय और उपस्थित जन समुदाय स्तब्ध एवं निराश था तब आचार्य नेमिचन्द्र ने मन में कुछ विचार किया और चामुण्डराय को अपने अन्दर उपजे अहंकार का त्याग करके वहाँ भीड़ में सबसे पीछे उपस्थित एक दीन-हीन वृद्ध महिला की ओर इंगित करते हुए उसके द्वारा नारियल की प्याली में लाये गए थोड़े से दूध को अभिषेक-द्रव्य में मिलाकर अभिषेक करवाने का निर्देश दिया। चामुण्डराय ने उनकी बात स्वीकार कर उस वृद्धा द्वारा लाये गए दूध को अभिषेक-द्रव्य में मिलाकर प्रतिमा का अभिषेक किया। तभी सर्वांग अभिषेक पूर्ण हुआ। कुछ कथाओं में उक्त वृद्धा के द्वारा स्वयं अभिषेक करने का उल्लेख मिलता है तथा उसे कुष्माण्डिनी देवी बताया गया है जो अभिषेक पूर्ण होते ही अचानक गायब हो गयी। उस वृद्धा के योगदान एवं स्मृति को चिरस्थायी बनाये रखने के लिए ही अहंकार मुक्त हुए चामुण्डराय ने बाद में बाहुबली स्वामी की प्रतिमा के सम्मुख ही उसकी सुन्दर प्रतिमा (गुल्लिका अज्जी) निर्मित करवायी।

जिनायतनों में प्रतिष्ठित प्रतिमाओं की भांति पर्वत शिखर पर प्रतिष्ठित इस ५७ फुट उत्तुंग विशालकाय प्रतिमा का अभिषेक प्रतिदिन किया जाना संभव नहीं है, इसकी स्वच्छता एवं अक्षुण्णता की दृष्टि से इसका मस्तकाभिषेक एक महोत्सव के रूप में प्रायः बारह वर्ष के अन्तराल पर किया जाता रहा है।

विचारणीय बिन्दु- जिस प्रकार ख्यातिलब्ध व्यक्तियों के साथ प्रायः विवाद भी जुड़ जाते हैं, उसी प्रकार इस अद्वितीय कलाकृति के सम्बन्ध में भी कतिपय बिन्दुओं पर मतभेद दिखायी पड़ते हैं, जिनमें से कुछ प्रमुख निम्नवत् हैं एवं विचारणीय भी-

गुरु व प्रतिष्ठाचार्य- कुछ विद्वानों का मत है कि आचार्य अजितसेन चामुण्डराय के गुरु थे, न कि आचार्य नेमिचन्द्र। आचार्य नेमिचंद्र तो उनके मात्र गुरु-स्थानीय थे।[१६] तथा मूर्ति की प्रतिष्ठा आचार्य अजितसेन ने करायी थी।[१७] जबकि कुछ अन्य विद्वान आचार्य नेमिचन्द्र को चामुण्डराय के बाल-सखा तथा बाद में विद्या गुरु होना मानते हैं।[१८] साथ ही आचार्य अजितसेन एवं आचार्य नेमिचन्द्र दोनों के द्वारा मूर्ति की प्राण-प्रतिष्ठा कराया जाना मानते हैं।[१९]

आचार्य नेमिचन्द्र द्वारा भरत चक्रवर्ती द्वारा निर्मापित बाहुबली मूर्ति की दर्शन-यात्रा की अगुवायी करना, मार्ग अवरुद्ध होने पर दक्षिण-दिशा स्थित पर्वत शिखर पर बाण प्रहार का निर्देश देना तथा महामस्तकाभिषेक के समय उत्पन्न संकट का निवारण किया जाना आदि तथ्य इंगित करते हैं कि यद्यपि आचार्य अजितसेन

वरिष्ठ आचार्य थे, लेकिन बाल-सखा तथा स्थानीय होने के कारण चामुण्डराय पर आचार्य नेमिचन्द्र का प्रभाव अपेक्षाकृत अधिक था और वे ही चामुण्डराय के वास्तविक धर्म-गुरु थे। इसकी पुष्टि आचार्य नेमिचन्द्र रचित **'त्रिलोकसार'** ग्रंथ की प्रथम गाथा से भी होती है जहा नृप राचमल्ल और चामुण्डराय के द्वारा नेमिचन्द्राचार्य की पाद-वन्दना करने का उल्लेख मिलता है। 'राचमल्ल' और 'पाद-वन्दना' का उल्लेख इस बात का द्योतक है कि गंग नरेश राचमल्ल की मृत्यु (९८४ ई.) से पूर्व आचार्य नेमिचन्द्र प्रमुख धर्माचार्य के रूप में प्रतिष्ठित हो चुके थे।

ऐसे में निःसन्देह मूर्ति की प्रतिष्ठा एवं महामस्तकाभिषेक का आयोजन भी उन्हीं के सान्निध्य एवं निर्देशन में किया गया होगा। यह अलग बात है कि ऐसे भव्य अवसर-मूर्ति-प्रतिष्ठा एवं प्रथम महामस्तकाभिषेक पर आचार्य अजितसेन जैसे अन्य वरिष्ठ धर्माचार्यों को भी आमंत्रित कर लिया गया हो। एक अन्य ग्रन्थ में मूर्ति स्थापना के पश्चात् चामुण्डराय के द्वारा आचार्य नेमिचन्द्र के चरणों में मूर्ति की पूजा के निमित्त छियान्वे हजार द्रव्य प्रमाण आय वाले ग्राम अर्पित करने के उल्लेख[२०] से भी उक्त मत की पुष्टि होती है। अन्यथा ग्रामों का अर्पण आचार्य अजिततसेन के चरणों में किया जाता। स्पष्टतः आचार्य नेमिचन्द्र ही प्रमुख धर्मगुरु आचार्य थे और उन्हीं के निर्देशन में इस महामूर्ति की प्रतिष्ठा सम्पन्न करायी गयी थी।

दक्षिण कुक्कुटजिन- श्रवणबेलगोल की बाहुबली की प्रतिमा को स्वयं आचार्य नेमिचन्द्र ने 'दक्षिण कुक्कुट जिन' नाम से अभिहित किया है।[२१] प्रायः विद्वान उत्तर भारत में एक अन्य कुक्कुट जिन की उपस्थिति के परिप्रेक्ष्य में[२२] दक्षिण भारत में इस मूर्ति के स्थित होने के कारण, यह नाम दिया जाना मानते हैं, लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि जिस शिला पर स्वर्णिम बाण छोड़ा गया (अर्थात् विन्ध्यगिरि) वह बाण छोड़ने वाली शिला (चन्द्रगिरि) की अपेक्षा दक्षिण दिशा में अवस्थित थी, इसीलिये इस मूर्ति को दक्षिण कुक्कुट जिन कहा गया है।

कुष्माण्डिनी देवी द्वारा अभिषेक- कतिपय कथाओं में दीन-हीन वृद्धा को कुष्माण्डिनी देवी का रूप बताते हुए उस कुष्माण्डिनी देवी के द्वारा मूर्ति के अभिषेक का उल्लेख मिलता है, जिसे सिद्धान्ताचार्य पं. कैलाशचंद्र शास्त्री कोरी-कल्पना मानते हुए लिखते हैं- "अभिषेक जन्म-कल्याणक का ही प्रतिरूप है। अभिषेक पाठ में आता है- 'इन्द्रोऽहं' इत्यादि। अर्थात् अभिषेक कर्ता अपने को इन्द्र मानकर अभिषेक करता है और जिन-जन्माभिषेक इन्द्र ही करता है, इन्द्राणी नहीं करती। यद्यपि वह बालक

भगवान को प्रसूतिगृह से लाकर इन्द्र को सौंपती है। उसका इतना ही नियोग है। स्त्री-पर्याय की सफलता जिनाभिषेक से नहीं, जिनभक्ति से है।"[२३]

सिद्धान्ताचार्य पण्डित जी के इन विचारों से असहमत होना अत्यन्त कठिन है, क्योंकि हमने भी अपने मन्दिरों में किसी नारी को दैनिक अभिषेक करते हुए नहीं देखा। हाँ, विशाल स्तर पर आयोजित महाभिषेकों में अवश्य उनकी सहभागिता दीख पड़ती है। कदाचित् यह जैन-समाज में भी नारी के सशक्तिकरण का द्योतक है।

जिनायतनों में अभिषेक- यही नहीं, पं. कैलाशचंद्र शास्त्री जी का तो यहाँ तक मत है कि मुनि दीक्षा के साथ ही स्नान तक वर्जित हो जाता है- "दिगम्बर परम्परा में अभिषेक का महत्व नहीं रहा है। मुनि दीक्षा होने के साथ ही जल स्नान वर्जित हो जाता है। बाल भगवान का अभिषेक पृथक् वस्तु है किन्तु भगवान बनने पर उसका महत्व समाप्त हो जाता है। उपवास के दिन श्रावक तक के लिये स्नान का निषेध आगम में है क्योंकि स्नान भी श्रृंगार का ही एक अंग है।"[२४]

कुछ विद्वान अभिषेक को उपासना का एक अंग और विनय प्रदर्शन[२५] मानते हैं। वे अभिषेक को श्रृंगार नहीं अपितु धर्म प्रभावना का अंग मानते हैं।[२६] वे कतिपय अस्पष्ट सन्दर्भों के आधार पर अर्हत् प्रतिमा के अभिषेक को आगम सम्मत ठहराते हैं।[२७]

गोम्मटेश बाहुबली की प्रतिमा तपस्वी-मुनि अवस्था की है। जिन-मंदिरों में भी मुनि दीक्षा से लेकर तीर्थंकर अवस्था तक की मूर्तियों का ही प्रतिदिन अभिषेक किया जाता है। उपर्युक्त मतान्तरों के परिप्रेक्ष्य में विद्वानों को जिन-बिंबों के अभिषेक के औचित्य को स्पष्ट करना चाहिए।

अन्य परम्परा में अभिषेक- तुलनात्मक चिन्तन करने पर मैंने एक अन्य तथ्य भी पाया है कि जैन-परम्परा में प्रतिमाओं के अभिषेक करने और अभिषेक-दर्शन का अत्यधिक महत्व है, किन्तु तीर्थों-नदियों-संगमों में स्नानादि का वह स्थान नहीं है इसके विपरीत जैनेतर हिन्दू-समाज में तीर्थ नदी-संगमों में स्नानादि को अत्यधिक पुण्यकारी माना गया है, जबकि मूर्तियों के अभिषेक की कोई विशेष परम्परा देखने में नहीं आती, सिर्फ शिव-लिंग का अभिषेक ही दीखता है। यह बिन्दु भी चिन्तनीय है। हाँ, हिन्दु-विग्रहों का नित्य श्रृंगार अवश्य किया जाता है। यद्यपि स्नान भी श्रृंगार का एक रूप है, तथापि जिनबिम्बों के अभिषेक एवं हिन्दू-मूर्तियों के श्रृंगार के अन्तर्भेद को तो समझना एवं स्वीकार करना ही होगा।

अभिषेक का उद्देश्य- जिन-मंदिरों में प्रायः पाषाण एवं धातु दोनों प्रकार की मूर्तियां रखी जाती हैं। चूंकि पाषाणमय मूर्तियों के नित्य अभिषेक से उनके क्षरण की संभावना रहती है, इसीलिए धातु-निर्मित मूर्तियों को रखकर उनका ही नित्य अभिषेक किया जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह अभिषेक परम्परा भी इन प्रतिमाओं की साफ-सफाई की दृष्टि से ही प्रारम्भ की गई थी। लेकिन विशालकाय पाषाण अथवा मृणमयी मूर्तियों का ऐसा महामस्तकाभिषेक कष्ट-साध्य होने के कारण वर्ष अथवा वर्षों के अन्तराल पर मूर्ति को चिरस्थायी बनाये रखने के उद्देश्य से ही आयोजित किया जाता है। चूंकि ये मूर्तियां धार्मिक हैं अतः इनके अभिषेकोत्सव के साथ धार्मिक कर्मकाण्ड-पूजन का जुड़ जाना स्वाभाविक प्रतीत होता है।

मूर्ति-प्रमाण- डॉ. जय कुमार जैन ने 'संवर' के ५७ कारणों (३ गुप्तियां, ५ समितियां, १० धर्म, १२ अनुप्रेक्षायें, २२ परीषह, और ५ महाव्रत) के आधार पर ५७ फुट ऊँची मूर्ति निर्मित किये जाने की संभावना व्यक्त की है।[२८] इस संभावना को नकारा तो नहीं जा सकता है, किन्तु तब अन्य बाहुबली गोम्मटेश प्रतिमाओं (कारकल, वेणूर आदि) की मापों के भी ऐसे ही आधार तलाशने होंगे।

'गोम्मट' नाम- लेकिन सर्वाधिक आश्चर्यजनक विवाद मूर्ति के स्वयं नाम 'गोम्मट' पर प्रतीत होता है। कुछ विद्वान 'गोम्मट' शब्द का तादात्म्य 'मन्मथ" (अर्थात् कामदेव) शब्द से करते हुए उसे प्रथम कामदेव बाहुबली से जोड़ते हैं। कुछ अन्य विद्वान "गोम्मट" से किए गये "मन्मथ" के तादात्म्य को अस्वीकार करते हुए भी बाहुबली से उसका सम्बन्ध स्थापित करते हैं।[२९]

शब्द-शास्त्र, भाषा-विज्ञान एवं स्वर-विद्या की कसौटी पर "गोम्मट" का "मन्मथ"से तादात्म्य उचित नहीं बैठता।[३०] साथ ही, पूर्व में दक्षिण-भारत में ही बाहुबली कामदेव के लिए "गोम्मट" शब्द का प्रयोग नहीं मिलना उपरोक्त दोनों मान्यताओं को मानने में प्रमुख बाधाएं हैं।

इस सम्बन्ध में दो अन्य प्रमुख विचारधाराएं विद्यमान हैं। एक के अनुसार पहले-पहल श्रवणबेलगोल की बाहुबली मूर्ति को 'गोम्मट' नाम मिला, कालान्तर में मूर्ति के प्रतिष्ठापक होने के नाते चामुण्डराय को 'गोम्मट' नाम दिया गया।[३१ व ३२]

दूसरे के अनुसार पहले-पहल 'गोम्मट' नाम मूर्ति के प्रतिष्ठापक चामुण्डराय को घरेलू[३३] अपरनाम (बचपन का) के रूप में मिला, और कालान्तर में प्रतिष्ठापक

चामुण्डराय अपरनाम 'गोम्मट' द्वारा निर्मापित होने के कारण मूर्ति 'गोम्मटेश्वर' कहलायी।[३४]

साहित्यिक एवं अभिलेखीय दोनों ही स्रोतों से इस बात का कोई प्रमाण नहीं मिलता है और न ही पुष्टि होती है कि 'गोम्मट' चामुण्डराय का व्यक्तिगत घरेलू बचपन का नाम था। श्रवणबेलगोल के **'ब्रह्मदेव स्तम्भ'** (जिसमें चामुण्डराय का चरित्र अंकित है), कन्नड **'त्रिषष्ठि लक्षण महापुराण'** (अर्थात् **चामुण्डराय पुराण**), और संस्कृत ग्रन्थ **'चारित्रसार'** में 'गोम्मट' शब्द चामुण्डराय के अपरनाम अथवा विरुद के रूप में नहीं मिलता है।[३५] श्रवणबेलगोल की इस गोम्मटेश्वर प्रतिमा के पाद-मूल में मराठी व कन्नड भाषा में अंकित तीनों शिलालेखों (संख्या-१७५, १७६ एवं १७९) में मूर्ति को 'श्री चामुण्डाय ने निर्मापित कराया' उल्लिखित है।[३६] वहां भी चामुण्डराय ने अपने को 'गोम्मट' अथवा 'गोम्मटेश्वर' अथवा 'गोम्मटराय' नहीं लिखा है। चामुण्डराय से संरक्षण प्राप्त कन्नड कवि रन्न ने ९९३ ई. में रचित अपने ग्रंथ **अजितपुराण** में भी चामुण्डराय अथवा इस मूर्ति के लिए 'गोम्मट' नाम का प्रयोग नहीं किया है और इस मूर्ति को 'कुक्कुटेश्वर' ही कहा है।[३७] आचार्य नेमिचन्द्र ने राजा राचमल्ल चतुर्थ की मृत्यु (९८४ ई.) एवं मूर्ति प्रतिष्ठा (९८१ ई.) के पश्चात रचित अपने ग्रंथ **'पञ्च संग्रह सूत्र' (गोम्मटसार)** में भी इस मूर्ति को **'दक्षिण कुक्कुट जिन'** ही कहा है, न कि गोम्मटेश्वर।[३८] इससे स्पष्ट है कि लगभग सन् ९९३ ई. तक यह मूर्ति और चामुण्डराय दोनों ही 'गोम्मट' नाम से प्रसिद्ध नहीं थे।

सबसे पहले सन् १११८ ई. के श्रवणबेलगोल के शिलालेख संख्या-७३ व १२५ में इस मूर्ति को 'गोम्मट देव' कहा गया है।[३९] यहाँ भी चामुण्डराय के लिये सिर्फ 'राय' लिखा गया है, न कि 'गोम्मट राय'। हां, ११८० ई. के शिलालेख संख्या-२०४ में प्रथम बार मूर्ति के साथ-साथ चामुण्डराय का भी 'गोम्मट' नाम से उल्लेख मिलता है।[४०]

उपर्युक्त तथ्यों के सम्बन्ध में दूसरे मत के प्रबल समर्थक प्रो. ए. एन. उपाध्ये का कहना है कि उक्त 'लेख-पत्र (रिकार्ड) चामुण्डराय के सब नामों की गिनती (उल्लेख) का दावा नहीं कर रहे हैं। और निषेधात्मक साक्षी और मौन रहने की बहस से कुछ भी साबित नहीं होता है।'[४१]

निःसंदेह कोई भी साक्ष्य न तो ऐसा दावा करता है, और न ही ऐसा दावा कर सकता है। चामुण्डराय विगत तीन पीढ़ियों के गंग-नरेशों के सेनापति- महामात्य थे, जाहिर है ९८१ ई. में मूर्ति की प्रतिष्ठापना के समय उनकी उम्र भी कम से कम ५०-५५ वर्ष रही होगी। इतने महान सेनापति-महामात्य की ५०-५५ वर्ष की आयु तक की उपलब्धियों के वर्णन में घरेलू नाम 'गोम्मट' का कहीं भी प्रयोग उपलब्ध नहीं होना और मूर्ति-प्रतिष्ठा के पश्चात बचपन के घरेलू नाम का अचानक प्रकट होकर इतना अधिक प्रसिद्ध हो जाना कि व्यक्ति, मूर्ति, स्थान तथा कला-शैली सभी कुछ उसी 'गोम्मट' नाम से विख्यात हो जाय, आश्चर्यजनक तो है ही, साथ ही, इतनी सरलता से स्वीकार योग्य भी नहीं है।

'गोम्मट' मूर्ति-प्रतिष्ठा के पश्चात् चामुण्डराय को दी गयी कोई उपाधि भी नहीं लगती है। बचपन का घरेलू नाम, वह भी एक महान व्यक्ति का। ५०-५५ वर्ष की आयु के व्यक्ति को अचानक सुन्दर (गोम्मट) कहा जाना संगत नहीं प्रतीत होता। हाँ, 'महापराक्रमी' अथवा 'श्रावक-रत्न' जैसे विशेषणों को तो उनके लिये सोचा जा सकता है। यदि 'गोम्मट' चामुण्डराय का घरेलू नाम था तो उसका उल्लेख अभिलेख अथवा साहित्य में मिलना ही चाहिए था। बाल सखा एवं धर्माचार्य गुरु नेमिचंद्र आचार्य ने अपने पूर्व ग्रंथ **'त्रिलोकसार'** में भी कहीं भी चामुण्डराय को 'गोम्मट' नाम से अभिहित नहीं किया है।[४२]

ऐसे में प्रो. उपाध्ये द्वारा यह कहना कि निषेधात्मक साक्षी और मौन रहने की बहस से कुछ भी साबित नहीं होता है, समीचीन प्रतीत नहीं होता है। यह इतिहास का एक बहुमान्य सिद्धांत है कि यदि किसी शब्द, स्थान, व्यक्ति, घटना इत्यादि का उल्लेख किसी साक्ष्य में नहीं हो और पूर्ववर्ती व अन्य समकालीन साक्ष्य भी मौन हों, तब इतिहासकार तत्समय उसके अस्तित्व पर प्रश्न-चिह्न लगाने को बाध्य ही होगा। अन्यथा अनेकानेक निर्धारित कालक्रम निराधार एवं काल्पनिक हो जाएंगे और इतिहास-पुनर्निर्माण की प्रक्रिया दुष्कर। **गोम्मटसार कर्मकाण्ड** की गाथा सं.-९६५ में गोम्मटदेव के द्वारा कर्मों की निर्जरा एवं तत्वार्थ के अवधारण के लिये **गोम्मट संग्रह सूत्र (पंचसंग्रह सूत्र** या **गोम्मटसार)** की रचना किये जाने का उल्लेख है। यहां गोम्मटदेव को रचनाकार कहा गया है, जबकि रचयिता स्वयं आचार्य नेमिचंद्र हैं। तो क्या आ. नेमिचंद्र ही गोम्मटदेव हैं? यहाँ 'गोम्मट' शब्द का प्रयोग न तो चामुण्डराय के लिये है, और न ही उसके द्वारा निर्मित किसी वस्तु के लिये है।

गोम्मटसार कर्मकाण्ड की गाथा संख्या- ६६८ में **गोम्मटसंग्रह सूत्र** एवं गोम्मटगिरि के साथ-साथ गोम्मट-जिन (अर्थात् गोम्मट के जिन) का उल्लेख मिलता है। यदि चंद्रगिरि एवं उस पर स्थित जिनालय के भगवान नेमिनाथ की मूर्ति को चामुण्डराय की अपेक्षा से गोम्मटगिरि व गोम्मट जिन कहा गया है, तब यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि चामुण्डराय निर्मापित विश्वविश्रुत बाहुबली प्रतिमा का आचार्य नेमिचंद्र ने 'गोम्मट' नाम से उल्लेख क्यों नहीं किया? इसी गाथा में बाहुबली मूर्ति को 'दक्षिण कुक्कुट जिन' कहा है।

इसी प्रकार यदि निर्माता चामुण्डराय अपरनाम गोम्मट की अपेक्षा से श्रवणबेलगोल की मूर्ति गोम्मटेश्वर बाहुबली कहलायी, तो कारकल एवं वेणूर की अन्य बाहुबली प्रतिमाएं अपने निर्माताओं के नाम से प्रसिद्ध क्यों नहीं हुयीं, और चामुण्डराय के नाम, वह भी घरेलू नाम 'गोम्मट' से ही क्यों प्रसिद्ध हुई, विचारणीय है।

स्पष्टतः 'गोम्मट' शब्द को चामुण्डराय का घरेलू नाम वर्तमान साक्ष्यों के परिप्रेक्ष्य में मानना कठिन प्रतीत होता है।

हमें उपर्युक्त विचारों के साथ-साथ अन्य संभावनाओं पर भी विचार करना चाहिए। क्योंकि 'गोम्मट' शब्द कब और कैसे जैन-धर्म साहित्य एवं बाहुबली के साथ जुड़ा, अभी तक गवेषणा का विषय है। दूसरे स्पष्टतः यह शब्द अलग-अलग सन्दर्भों में अलग-अलग अर्थों में प्रयुक्त हुआ प्रतीत होता है। तीसरे, मुख्यतया यह शब्द दक्षिण भारत में स्थित श्रवणबेलगोल (९८१ ई., ५७ फुट), कारकल (१४३२ ई. ४१ फुट ५ इंच) तथा वेणूर (१६०४ ई., ३५ फुट) की अति विशालकाय एवं बाहुबली प्रतिमाओं के साथ ही जुड़ा दिखता है। तीनों ही प्रतिमाएं मूर्ति-कला का उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

'गोम्मट' शब्द मराठी, कोंकणी एवं कन्नड भाषा का शब्द है जिनमें इसके अर्थ हैं- उत्कृष्ट, उत्तम, सुन्दर, एक्सीलेंट, प्रसन्न करने वाला।[४३] संज्ञा-शब्द की अपेक्षा यह एक विशेषण- शब्द अधिक प्रतीत होता है।

विन्ध्यगिरि और चन्द्रगिरि जैसी सुन्दर दो विशाल पर्वत श्रेणियों के मध्य स्थित धवल सरोवर (झील) के आकर्षण और रमणीयता के कारण कहीं श्रवणबेलगोल का दूसरा भौगोलिक नाम 'गोम्मट' तो नहीं है? लेकिन, श्रवणबेलगोल का दूसरा भौगोलिक नाम मानने पर वही प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि इससे पहले अन्यत्र ऐसा उल्लेख क्यों नहीं देखने को मिलता है? पूर्वाग्रह रहित होकर इस दृष्टि से भी अनुसंधान करना होगा।

कभी-कभी यह लगता है कि 'गोम्मट' के उपर्युक्त शाब्दिक अर्थों के साथ-साथ यदि 'विशालकायता और महानता' को भी जोड़ दिया जाये तो समस्त सन्दर्भों के वास्तविक अर्थ प्राप्त हो जाएंगे।

इसीलिए, मुझे तो सर्वाधिक उचित यही प्रतीत होता है कि 'गोम्मट' शब्द एक विशेषण-शब्द है, जिसका भिन्न-भिन्न सन्दर्भों में भिन्न-भिन्न अर्थों में प्रयोग हुआ है।[४४] और इसीलिये किसी भी परम्परा (श्रमण व सनातन दोनों) से इसका पूर्ववर्ती सम्बन्ध दृष्टिगोचर नहीं होता है। इस दृष्टि से गहन शोध अपेक्षित है।

फिलहाल, कुछ भी हो, इतनी अनुपम कृति के नाम 'गोम्मट' का रहस्य न सिर्फ रोचक, वरन् अनुसंधान हेतु हजारों वर्ष बाद भी आकर्षित करता है। श्रवणबेलगोल में स्थापित होने वाला गोम्मटेश प्राकृत विश्वविद्यालय उपर्युक्त सभी विचारणीय बिन्दुओं को निष्कर्ष प्रदान करने में पूर्ण तथा सक्षम-सफल होगा, ऐसा विश्वास है।

जे कम्मेसूरा ते धम्मेसूरा- गोम्मटेश्वर बाहुबली स्वामी जिस प्रकार रणक्षेत्र के विजेता होने के साथ-साथ कैवल्य प्राप्त कर धर्म-विजेता भी बन गए ठीक उसी प्रकार उनके एक अनन्य भक्त चामुण्डराय तीन पीढ़ियों के गंग-नरेशों के प्रधान सेनापति होने के साथ-साथ गोम्मटेश्वर बाहुबली की प्रतिमा की प्रतिष्ठा कर कर्मशूर के साथ-साथ धर्मशूर भी हो गये। समान व्यक्तित्व के धनी दो महापुरुषों के मध्य सदियों का अन्तराल होते हुए भी, मिलन का प्रतीक यह गोम्मटेश्वर बाहुबली प्रतिमा ही है। निःसदेह,

"जे कम्मेसूरा, ते धम्मेसूरा"

(अर्थात् जो कर्म-क्षेत्र में शूर वीर होते हैं, वे धर्म क्षेत्र में भी शूर वीर होते हैं)।

अब समाज को इन्तजार है, बस अगले कर्मशूर-धर्मशूर बाहुबली चामुण्डराय का। समाज में धर्मनिष्ठ श्रावकों और कर्मयोगियों की कोई कमी नहीं है, बहुत से श्रावक शिरोमणि चामुण्डराय बनने को आतुर हैं। लेकिन असली परीक्षा यहीं से प्रारंभ होती है। देखना है, कितने धर्मानुरागी बाहुबली स्वामी की तरह अपना स्वर्णिम-रजतीय राजपाट त्यागने को तैयार होते हैं, और कितने चामुण्डराय की तरह अपना अहंकार विसर्जन कर दीन-हीन वृद्धा से अभिषेक करवाने को तत्पर। सच्चे नए बाहुबली चामुण्डराय की उपलब्धि ही इस प्रतिमा का सच्चा एवं भव्यतम महामस्ताभिषेक होगा।

- ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ

संदर्भ-

१. **वीर,** गोम्मटेश अंक, फरवरी १९८१, पृष्ठ-१२

2. A History of Indian and Eastern Architecture, II, p.-72-73
3. Jaina Antiquary. V, 4, p.-103
4. Walhouse, cf Sturrock, South Canara I, p.-86
5. Jaina Antiquary, VI, 1, p.-34

६. **वीर,** गोम्मटेश अंक, फरवरी, १९८१, पृष्ठ-१९

७. सतीश कुमार जैन, **गोम्मटेश्वर बाहुबली एवं श्रवणबेलगोल,** पृष्ठ-५६

८. 'तक्ख सिलाए महप्पा बाहुबली तस्स निच्च पडिकूलो।।' - **पउमचरियं**, ५-३८

९. "तत्थ बाहुबलिस्स रायहाणी तक्खसिला नाम।" - **आवश्यक सूत्र निर्युक्ति** पृष्ठ १८०-१८१

१०. विन्ध्यगिरि सुत्तालय के प्रवेशद्वार के बाई ओर कवि बोपण्ण द्वारा अंकित लेख सं.-३३६ के अनुसार। लेकिन आचार्य जिनसेनकृत **आदिपुराण** में ५०० धनुष प्रमाण मूर्ति के निर्माण का उल्लेख मिलता है :-
'गोम्मटदेवं वंदामि पंचसय धणुहदेह उच्चतं।' - **परिनिर्वाण भत्ति,** २५

११. कहीं-कहीं माँ काललदेवी द्वारा आचार्य अजितसेन से **आदिपुराण** में उक्त प्रतिमा की महिमा को सुनकर उसके दर्शन की पुत्र से इच्छा व्यक्त करने का उल्लेख मिलता है।

१२. डॉ प्रेमचन्द्र रांवका, **तीर्थवंदना,** जनवरी, २००६, पृष्ठ-२१

१३. **गोम्टेश्वर बाहुबली एवं श्रवणबेलगोल,** सतीश कुमार जैन, पृष्ठ ५१-५२

१४. कवि दोड्डयकृत **भुजबली चरित** (१५५० ई.) पद्य संख्या-६४

१५. डॉ. ज्योति प्रसाद जैन, Gommatesvara Commemoration Volume, १९८१, पृष्ठ-४४

१६. पं. कैलाशचंद्र शास्त्री, **वीर**, गोम्मटेश अंक, फरवरी १९८१, पृष्ठ-१९

१७. वही, पृष्ठ-१९

१८. डॉ. ज्योति प्रसाद जैन, **वीर**, गोम्मटेश अंक,फरवरी, १९८१, पृष्ठ-१३

१९. वही, पृष्ठ-१२

२०. **बाहुबली चरित,** ६१

२१. 'दक्खिण कुक्कुडजिणो जयउ' -**गोम्मटसार,** गाथा संख्या-९६८

२२. **अनेकांत**, ५८/३-४, पृष्ठ-२३

२३. **वीर,** गोम्मटेश अंक, फरवरी १९८१, पृष्ठ-२२

२४. वही, पृष्ठ-२२

२५. नाथूराम डोंगरीय जैन न्यायतीर्थ, **जैन दर्शन में उपासना एवं स्याद्वाद**, पृ.-३७

२६. वही, पृष्ठ-४१

२७. वही, पृष्ठ-४१

२८. **अनेकांत,** ५८/३-४, पृष्ठ-५

२९. के. पी. मित्र, **Jaina Antiquary**, Vol. VI, १, पृ.-३३

३०. विस्तृत जानकारी हेतु प्रो. ए. एन. उपाध्ये का लेख 'गोम्मट', **अनेकांत,** मई १९४१ पढ़ें।

३१. गोविन्द पै, **जैन सिद्धांत भास्कर,** सितम्बर १९३७, पृष्ठ-१०२

३२. नाथूराम प्रेमी जी की **त्रिलोकसार** पर भूमिका, पृ.-८, **माणिकचंद दि. जैन ग्रंथमाला नं.-१२,** बम्बई, संवत् १९७५

३३. पं. कैलाशचंद्र शास्त्री, **वीर,** गोम्मटेश अंक, फरवरी १९८१, पृष्ठ-१९

३४. प्रो. ए. एन. उपाध्ये, **अनेकांत**, अप्रैल १९४१, पृष्ठ-२३३

३५ गोविंद पै, **जैन सिद्धांत भास्कर**, १९३७, पृष्ठ-१०२-१०३

३६. वही, पृष्ठ- १०४

३७. वही, पृष्ठ-१०२

३८. **गोम्मटसार,** गाथा संख्या-९६८

३९. **एपीग्राफिया कर्णाटिका,** भाग-२, अनुक्रमणी, पृष्ठ-१३

४०. **एपीग्राफिया कर्णाटिका,** भाग-२, २३८, पृक्ति-१६

४१. प्रो. ए. एन. उपाध्ये, **अनेकांत,** मई १९४१, पृष्ठ-२९७

४२. गोविन्द पै, **जैन सिद्धांत भास्कर,** सितम्बर १९३७, पृष्ठ-१०५

४३. **गोम्मटसार जीवकाण्ड, भाग-१,** प्रस्तावना, पृष्ठ-८

४४. **गोम्मटसार कर्मकाण्ड, भाग-२**

''गोम्मट संगह सुत्तं गोम्मटदेवेण गोम्मटं रइयं।' (गाथा संख्या-**९६५**)

'गोम्मट संगह सुत्तं गोम्मटसिहरूवरि गोम्मटजिणो य। (गाथा संख्या-**९६८**)

गोम्मटेश्वर बाहुबली और गोम्मटेस थुदि : एक अनुशीलन

- डॉ. भागचन्द्र जैन 'भागेन्दु'

प्रत्येक अतीत से वर्तमान उपजता है, और प्रत्येक वर्तमान भविष्य का सर्जक है। इतिहास का यह चक्र काल की ध्रुवता की धुरी पर घूमता है। अतीत के किस काल खण्ड के छोर पर आरंभ हुआ होगा वह ध्रुव, जिसके चौदहवें मनु या कुलकर नाभिराय थे? स्वयं नाभिराय के पुत्र, प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ ऋषभदेव युग-प्रणेता पुराण पुरुष हैं। उनका व्यक्तित्व एक ऐसी आधार शिला है, जिसके ऊपर विश्व के समस्त धर्मों का एक सर्वमान्य प्रासाद खड़ा किया जा सकता है।

राज्य व्यवस्था सम्पादित करने में सन्नद्ध भगवान् ऋषभदेव के दरबार में देवों और अप्सराओं के साथ समागत इन्द्र चिन्तित था कि भगवान् राज्य और भोगों से किस प्रकार विरक्त होंगे? चिन्तन के उपरान्त इन्द्र ने नृत्य के लिए ऐसे पात्र को नियुक्त किया जिसकी आयु अत्यन्त क्षीण हो गयी थी, वह थी "नीलांजना" अप्सरा। नृत्य करते-करते ही आयु के क्षय होने से क्षणभर में वह विलीन हो गयी। इस प्रसंग ने भगवान् ऋषभदेव के हृदय पर गहरा प्रभाव डाला। वे संसार, शरीर तथा भोगों की क्षण-भंगुरता पर विचार करके तत्क्षण विरक्त हो गये एवं काललब्धि को पाकर मुक्ति के मार्ग पर समुद्यत हुए और उग्र तपस्या के द्वारा उन्होंने केवलज्ञान प्राप्त किया।

भगवान् ऋषभदेव की विरक्ति के उपरान्त यद्यपि "राजा" उपाधि से भरत और बाहुबली दोनों को अलंकृत किया गया था, किन्तु कुल में ज्येष्ठ होने के कारण भरत अपना वर्चस्व चाहते थे; अतः उन्होंने दिग्विजय के लिए प्रयाण किया। सर्वत्र हार्दिक स्वागत प्राप्त करते हुए वापसी में उनका "चक्र" अयोध्या के गोपुरद्वार को पार करके आगे नहीं जा सका और अटककर वहीं रुक गया। तब आश्चर्यचकित सभी को निमित्तज्ञानियों ने बताया कि हे महाराज भरत! यद्यपि आपने बाहर विजय प्राप्त कर ली है तथापि आपके घर के सदस्य अभी आपके अनुकूल नहीं हैं, इनमें आपके भाई बाहुबली प्रमुख हैं।

बाहुबली के पास सन्देश भेजा गया कि वे भरत को प्रणाम कर सम्मानित करें। बाहुबली इस मर्मभेदक सन्देश को सहन नहीं कर सके। उन्होंने उत्तर दिया कि "अग्रज नमस्कार करने योग्य हैं" यह बात सामान्य समय में उचित है, किन्तु जब वह तलवार धारण कर दिग्विजय के लिए प्रस्थित हैं, तब उन्हें प्रणति-निवेदन कैसे उपयुक्त हो सकता है? अतः मुझे पराजित किये बिना भरत इस पृथ्वी का उपभोग नहीं कर सकते। प्रणाम के स्थान पर मैं उन्हें समाह्वय ही दे सकता हूँ।

फलतः संघर्ष अनिवार्य हो गया। दोनों ओर से भयंकर युद्ध की तैयारी हुई। दोनों ओर के मंत्रियों ने सोचा कि ये दोनों भाई तद्भव मोक्षगामी हैं, अतः युद्ध में जन-धन की अनावश्यक हानि नहीं होना चाहिए। इसलिए भरत और बाहुबली दोनों में सीधा धर्मयुद्ध हुआ। भरत दृष्टियुद्ध, जलयुद्ध और मल्लयुद्ध में पराजित हो गये तो उन्होंने खीझकर बाहुबली पर "चक्ररत्न" चला दिया। किन्तु बाहुबली के अवध्य होने के कारण वह बाहुबली की प्रदक्षिणा देकर निस्तेज हो भरत के पास ही वापस चला गया।

इस पर बाहुबली ने सोचा कि देखो! इस नश्वर राज्य के लिए हमारे बड़े भाई ने हमें मारने का कैसा जघन्य कार्य किया है? वस्तुतः यह राज्य तो क्षणभंगुर है। अतः वे विरक्त हो गये और मुनिव्रत को धारण कर निर्ग्रन्थ बन गये। उन्होंने निरन्तर एक वर्ष तक निराहार खड़े रहकर "प्रतिमा-योग" धारण किया। वन की लताएँ उन पर छा गयीं। सर्प तथा अन्य विषैले सरीसृप उनके ऊपर फूंकार करते रहे। केश कंधों तक आ गये। किन्तु एक शल्य बाहुबली के मन/चित्त में व्याप्त थी कि राज्य तो छोड़ दिया किन्तु दो पैर अभी भी भरत की भूमि पर ही हैं। यह शल्य (विकल्प) उनके केवलज्ञान में बाधक थी। अतः जैसे ही भरत ने उनके निकट पहुँचकर सरलभाव से क्षमायाचना की और उनकी पूजा की, उनकी शल्य मिट गयी। वे निःशल्य हो गये और तत्क्षण उन्हें केवलज्ञान (सर्वोत्कृष्ट ज्ञान) प्राप्त हो गया। बाहुबली सर्वज्ञ, सर्वदर्शी हो गये और कुछ ही वर्षों के बाद शेष कर्मों का क्षय करके मुक्त हो गये। इस प्रकार भगवान् ऋषभदेव के इतिवृत्त के चित्र में उनके दोनों पुत्रों भरत और बाहुबली के रंगों में पूर्णता आयी है। भरत और बाहुबली दोनों महामानव थे। दोनों के चरित्र स्वतन्त्र हैं, किन्तु दोनों परस्पर पूरक भी हैं। बाहुबली का चित्र बहुरंगी है और उनका

प्रत्येक रंग चटकदार है। उनकी महानता आकाश की ऊँचाइयों को छूती है। उनके जीवन के हर मोड़ पर एक नया कीर्तिमान स्थापित होता चलता है।

वे इस युग के प्रथम कामदेव (त्रिलोक सुन्दर) थे, अतः **"गोम्मटेश्वर"** कहलाते थे। सुन्दर थे साथ ही अप्रतिम बली थे इसलिए वे **"बाहुबली"** कहलाते थे। वे अपने अधिकारों की रक्षा के प्रति सर्वदा जागरूक रहते थे। अधिकारों की रक्षा करने का साहस और सामर्थ्य भी उनमें था, किन्तु कर्तव्यों के प्रति पूर्णरूपेण समर्पित थे। दिग्विजय कर भरत **"सार्वभौम सम्राट्"** का विरुद प्राप्त करना चाहते थे। बाहुबली का स्वतन्त्र अस्तित्व इसमें बाधक था। बाहुबली के मन में अग्रज के प्रति अवज्ञा का भाव नहीं था, किन्तु पिता से प्राप्त राज्य का उपभोग और उसकी सुरक्षा उनका स्वत्व था उसकी रक्षा करना ही उनका कर्तव्य बन गया था। दोनों पक्षों के औचित्य-अनौचित्य की परीक्षा अहिंसक युद्ध के माध्यम से हुई। इसी घटना से उत्पन्न हुई विरक्ति ने बाहुबली को उग्र तपस्वी, श्रमण-साधु बना दिया।

इन्हीं बाहुबली का आख्यान इतिहास के अन्तराल और दिशाओं की दूरी को अतिक्रान्त करता हुआ दक्षिण भारत के कर्नाटक राज्य के श्रवणबेलगोल स्थित सुरम्य पर्वत शिखर विंध्यगिरि-इन्द्रगिरि पर जा पहुँचा जहाँ अब से लगभग एक हजार वर्ष पूर्व चैत्र शुक्ल पंचमी, विक्रम संवत् १०३८, दिनांक १३ मार्च सन् ९८१ ईस्वी, गुरुवार□ को गंग नेरेशों के प्रधानमंत्री एवं सेनापति वीर मार्तण्ड चामुण्डराय, जिनका घरेलू नाम 'गोम्मट' था, ने गोम्मटेश्वर बाहुबली की ५७ फीट ऊँची एक विशालकाय अतिशय मनोज्ञ प्रस्तर प्रतिमा की स्थापना अपने महनीय गुरु सिद्धांतचक्रवर्ती श्री नेमीचन्द्र जी के सान्निध्य में की थी।

श्रवणबेलगोल कर्नाटक राज्य के हासन जिले में अत्यन्त प्राचीन, रमणीक और विश्वविख्यात सांस्कृतिक तीर्थस्थल है। यहाँ के शिलालेख, भव्य प्राचीन मंदिर और विशाल मूर्तियाँ न केवल जैन दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं, प्रत्युत भारत की प्राचीन सभ्यता, संस्कृति, कला, पुरातत्त्व और इतिहास की ये सब बहुमूल्य धरोहर हैं।

श्रवण=श्रमण-जैन मुनि, वेल=श्वेत उज्ज्वल (कन्नड़ भाषा में) गोल=सरोवर; अतः इस पूरे पद का अर्थ है- "जैन साधुओं का धवल सरोवर"। यहाँ के विन्ध्यगिरि पर गोम्मटेश्वर की दिगम्बर निर्विकार, कायोत्सर्गासन, उत्तराभिमुखी, ध्यानस्थ, सौम्य

प्रतिमा अवस्थित है। इसके भव्य दर्शन श्रवणबेलगोल से १५ मील पूर्व से ही प्रारम्भ हो जाते हैं। विन्ध्यगिरिं का स्थानीय नाम "दोडवेट्टा" (बड़ी पहाड़ी) है। यह समुद्रतल से ३३४७ फुट ऊपर है और निम्नवर्ती मैदानी भाग से ४७० फुट ऊँची है। इस मूर्ति का प्रधान भास्कर (निर्माता) था-अरिष्ट नेमि और प्रतिष्ठाचार्य थे सिद्धान्तचक्रवर्ती आचार्य नेमिचन्द्र जी।

गोम्मटेश्वर बाहुबली की यह मूर्ति यद्यपि दिगम्बर जैन है, परन्तु वह संसार की अलौकिक निधि है; जो शिल्पकला का बेजोड़ रत्न है। यह समग्र मानव-जाति की अमूल्य धरोहर है। इस मूर्ति में पाषाण, काठिन्य और कलात्मक कमनीयता का मणि-कांचन योग इतना बेजोड़ है कि एक हजार वर्ष बीत जाने पर भी यह मूर्ति सूर्य, मेघ, वायु आदि प्रकृति देवी की अमोघ शक्तियों से बातें करती हुई अक्षुण्ण है। आगे, पीछे, बगल में बिना किसी आश्रय तथा बिना किसी छाया के अवस्थित यह मूर्ति विश्व का आठवाँ आश्चर्य है। यह कला का चरमोत्कृष्ट निदर्शन है। महाकवि कालिदास की यह पंक्ति- "क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः" इस मूर्ति पर अक्षरशः चरितार्थ होती है। भगवान् बाहुबली की यह मूर्ति वर्तमान क्षुब्ध संसार को सन्देश दे रही है कि परिग्रह और भौतिक पदार्थों की ममता ही पाप का मूल है। जिस राज्य के लिये भरतेश्वर ने मुझसे संग्राम किया, मैंने विजयी होकर भी उस राज्य को जीर्ण-तृणवत् क्षणभर में त्याग दिया। यदि तुम शान्ति चाहते हो तो मेरे समान निर्द्वन्द्व होकर आत्मरत होओ। यह मूर्ति त्याग, तपस्या और तितिक्षा की प्रतीक है।

षट्खण्ड आगम सिद्धान्त के अध्येता, **गोम्मटसार, त्रिलोकसार, लब्धिसार** एवं **क्षपणसार** ग्रन्थों के प्रणेता तथा इस मूर्ति के प्रतिष्ठापक सिद्धान्त चक्रवर्ती नेमिचन्द्राचार्य ने इस मूर्ति के गुणानुवाद स्वरूप शौरसेनी प्राकृत में संस्कृत के 'उपजाति' (इन्द्रवज्रा) छन्द में आठ पद्यों में भावप्रवण **'गोम्मटेस थुदि'** की रचना की थी। आकार में लघु होते हुए भी यह स्तुति उत्कृष्ट साहित्यिक कृति बन पड़ी है।

- निदेशक, संस्कृत प्राकृत तथा जैन विद्या अनुसंधान, केन्द्र, दमोह (म.प्र.)

❐ (टिप्पणी- डॉ. ज्याति प्रसाद जैन प्रभृति अनेक विद्वानों ने मूर्ति प्रतिष्ठापना का दिन रविवार सूचित किया है। इसी अंक के पृष्ठ १५ पर डाक्टर साहब का लेखांश दृष्टव्य - सम्पादक)

गोम्मटेस थुदि

(इन्दवज्जा)

- सिद्धान्त चक्रवर्ती नेमिचन्द्राचार्य

विसट्ट-कंदोट्ट दलाणुयारं, सुलोयणं चंद-समाण-तुण्डं।
घोणाजियं चम्पय-पुप्फसोहं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं।।१।।

जिनके सुन्दर नेत्र मृणाल-सहित नीलकमल की पांखुरी का अनुकरण करते हैं, जिनका मुख चन्द्र-मंडल के समान सुशोभित है, और जिनकी नासिका चम्पक पुष्प की शोभा को पराजित करती है, ऐसे गोम्मटेश को मैं नित्य प्रणाम करता हूँ।

अच्छाय-सच्छं जलकंत-गंडं, आबाहु-दोलंत सुकण्ण-पासं।
गइंद-सुण्डुज्जल बाहुदण्डं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं।।२।।

जिनकी देह आकाश की भांति निर्मल है, जिसके कपोल जल के समान स्वच्छ हैं, जिनके कर्ण-पल्लव स्कन्धों तक दोलायित हैं, जिनकी दोनों उज्ज्वल भुजाएं गजराज की सूंड के समान सुन्दर लगती हैं; ऐसे गोम्मटेश-बाहुबली को मैं सर्वदा नमन करता हूँ।

सुकण्ठ-सोहा जिय-दिव्व संखं, हिमालयुद्दाम विसाल कंधं।
सुपेक्खणिज्जायल-सुट्ठुमज्झं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं।।३।।

अपने विलक्षण कण्ठ की शोभा-श्री से जिन्होंने दिव्य शंख की शोभा-सुषमा को जीत लिया है, जिनके विशाल कन्धे हिमालय की भांति उन्नत और उदार हैं, जिनका कटि-प्रदेश सुदृढ़ और प्रेक्षणीय है, ऐसे गोम्मटेश जिनेन्द्र की मैं सतत वन्दना करता हूँ।

विंज्झायलग्गे पविभासमाणं, सिंहामणिं सव्व-सुचेदियाणं।
तिलोय-संतोसय पुण्णचंदं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं।।४।।

विंध्यगिरि के अग्रभाग में जो अपनी अनुपम कान्ति से दमक रहे हैं, विंध्याचल के पर्वत-भाग में जो तपस्यालीन हैं, और सब भव्यों के लिए जो वैराग्यरूपी प्रसाद के शिखर की शिखामणि हैं, तथा तीन लोक के जीवों को आनंद प्रदान करने में जो पूर्ण चन्द्रमा के समान हैं, ऐसे उन प्रथम कामदेव गोम्मटेश को मैं सदा नमोऽस्तु करता हूँ।

लयासमक्कंत महासरीरं, भव्वावलीलद्ध सुक्कप्परुक्खं।
देविंदविंदच्चिय पायपोम्मं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं।।५।।

जिस कामदेव के सुविशाल शरीर पर चरण से भुजाओं तक माधवी लताएं लिपटी हुई हैं, भव्यों के लिए जो कल्प-वृक्ष जैसे फल-प्रदाता हैं, और देवेन्द्र-समूह जिनके चरण-कमलों की अर्चना-पूजा करता है, ऐसे गोम्मटेश क्षमा-श्रमण को मैं भक्ति-भाव से अनुक्षण प्रणति करता हूँ

दियंबरो यो ण च भीइ जुत्तो, चांबरे सत्तमणो विसुद्धो।
सप्पादि जंतुप्फुसदो ण कंपो, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं।।६।।

जो दिगम्बर श्रमण हैं, सप्त भय से विप्रमुक्त हैं, अभीत हैं, वस्त्र वल्कलादि पर आसक्त मन वाले जो नहीं हैं, और विषधर नागराजादि जन्तुओं से दुरावृत्त होने पर भी जो अकम्प-अविचल हैं, ऐसे गोम्मटेश महायोगी का मैं नित्य-नियम से नमस्कार-पूर्वक ध्यान करता हूँ।

आसां ण ये पेक्खदि संच्छदिट्ठि, सोक्खे ण वंछा हयदोसमूलं।
विराय-भावं भरहे विसल्लं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं।।७।।

जो क्षायिक सम्यग्दृष्टि होने से अक्षोभित मति वाले हैं, तथा आत्मलीन होने के कारण जो बहिरंग दृष्टि से नहीं देखते, स्वदोषों के मूल मोह-विनष्ट होने से जिन्हें सांसारिक सुखों की बांछा नहीं रही, और अग्रज भरत के प्रति जो संज्वलन मान था वह अब वैराग्य में परिणत हो गया है, ऐसे निःकांक्षित गोम्मटेश के विमल व्यक्तित्व के चरणों में मैं सतत् सिर झुकाता हूँ।

उपाहिमुत्तं धण-धाम वज्जियं, सुसम्मजुत्तं भय-मोह हारयं।
वस्सेय-पज्जंत भुव वास-जुत्तं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं।।८।।

जो समस्त परिग्रह से मुक्त हैं, धन और धाम का जिन्होंने अन्तरंग से ही परित्याग कर दिया, मद और मोह, रागद्वेष को जिन्होंने तप द्वारा जीतकर क्षायिक भाव में स्थित हुए तथा पूरे एक वर्ष तक जिन्होंने अखंड उपवास व्रत लिया है, ऐसे श्री गोम्मटेश्वर महातपस्वी के श्री चरणों में मन-वचन और काय से मेरा नमोस्तु निवेदित है।

गोम्मटेस थुदि का हिन्दी पद्यानुवाद

- श्री शिव विश्वकर्मा 'प्रशान्त',
कृषि विभाग, खुरई (सागर) म.प्र.

नीलाम्बुज पांखुरि से दृग-पल,
मुख-चन्द्र सुशोभित दीप्ति-विरल।
नासा चम्पक का मुदित सुमन,
प्रभु गोम्मटेश पद सत नमन।।१।।
शुचि-गात, विमल जल-द्वित कपोल,
गज सुंड-विशद भुज-दण्ड दोल।
कंधायत कर्ण-पास-लम्बन,
प्रभु गोम्मटेश पद सतत नमन।।२।।
जित दिव्य-शंख जिन-कण्ठ-सुष्ट,
हिमगिरि सम उन्नत कंध पुष्ट।
कटि-तट सुदीर्घ शुचि-शुभ-दर्शन,
प्रभु गोम्मटेश पद सतत नमन।।३।।
विन्ध्या गिरि-विलसित प्रखर-कांति,
धृत-पूर्ण-चन्द्र त्रैलोक्य-शान्ति।
विद-भव्य-शिरोमणि नभ चंदन,
प्रभु गोम्मटेश पद सतत नमन।।४।।
मृदु लता-पात आच्छन्न-गात,
सुर-तरु, भव्यों हित फल प्रदात।
देवेन्द्र-सुलभ-पद-रज-वंदन,
प्रभु गोम्मटेश पद सतत नमन।।५।।
तन-धीर, दिगम्बर भय विमुक्त,
वल्कल वस्त्रादि विराग युक्त।
परिविष्ट-नाग मन निष्कंपन,
प्रभु गोम्मटेश पद सतत नमन।।६।।
समदृष्टि क्षोभ-जित आत्मलीन,
निज दोष-मूल वांछा-विहीन।
तज भरत वैर वैराग्य धरन,
प्रभु गोम्मटेश पद सतत नमन।।७।।
धन-गृह-उपाधि-सम्पद-विरक्त,
मद-मोह-राग-द्वेषादि-त्यक्त।
सम्वत्सरीय उपवास-ग्रहन,
प्रभु गोम्मटेश पद सतत नमन।।८।।

(वीर के **गोम्मटेश अंक** फरवरी १९८१ से)

बाहुबलि स्तवन

गोम्मट आपका चन्द्रानन
स्वयमेव हृदय को हरता है
मोहान्धकार हरने वाला
सम्यक् धर्मामृत झरता है।।
हे महातपस्वी बाहुबलि
दर्शन पाकर हर्षायेंगे
कलशाभिषेक से अब अपने
जीवन को सफल बनायेंगे।।

- (स्व.) श्री कल्याण कुमार जैन 'शशि'

स्वयं पंचपरमेष्ठी

हे भव्यात्म्न् ! तू हि पंचपरमेष्ठी। तू ऐसी लख निज शक्ति।।ध्रु.।।
तू सिद्ध स्वभावी नित्य, तव स्वभाव सिद्धिहि सत्य,
नहि विकृति तुझमें लेश
तुझमें न कमी, तू हि पंचपरमेष्ठी। तू ऐसी लख निज शक्ति।।१।।

अर्हन्त अभी भी तू है, अर्हता नित्य तुझमें हैं,
तू ज्ञान मयी शाश्वत है
तू ज्ञानमयी अन्तरीक्ष तव बस्ती। तू ऐसी लख निज शक्ति।।२।।

आचार्य बस रहे तुझमें, कह दोष उन्हें क्षण क्षण में,
कर सुधार तू अपने में
तू ज्ञानमयी सुखमय, त्यज परमस्ती। तू ऐसी लख निज शक्ति।।३।।

तू उपाध्याय ध्रुव सत्य, तू पूछ तुझे पथ नित्य
पथदर्शी करुणावन्त
उससे न हटा तू तब सम्यक् दृष्टि। तू ऐसी लख निजशक्ति।।४।।

निज आत्मा ही साधू है, उछलता ज्ञान सिंधू है।
तू अनंत गुण का विभु है।
तू तुझमें रहकर योगों की गुप्ती। तू ऐसी लख निज शक्ति।।५।।

- श्री मनोहर मारवडकर,
स्वधर्म, १७ बी, महावीर नगर, नागपुर-९

नव वर्ष की बधाई

नव वर्ष की बधाई सुरभित सुखद पवन हो।
जीवन बने सम्पुन्नत, निर्दोष शान्त मन हो।।

वृक्षों की नित्य छाया, मिलती रहे सभी को,
पर्यावरण प्रदूषण से मुक्त भू गगन हो।।

मद मोह लोभ मत्सर अज्ञान हो तिरोहित,
लक्ष्मी करे बसेरा, सबका सुखद सदन हो।।

धर्मज्ञ शान्तचित्त हो, मानव प्रबुद्ध ज्ञानी
बढ़ने की नित्य आगे मन में लगी लगन हो।।

हों रोग दोष दुख से उन्मुक्त जीव धारी।
करुणा दया से पूरित सबका ही आचरण हो।।

आतंकवाद भू पर बढ़ने कहीं न पाये।
उन्माद क्रूरता का ईश्वर करे क्षरण हो।।

शिशु वृन्द नारियों का जीवन रहे सुरक्षित,
वसुधा समस्त 'जड़िया' सबका प्रमोद बन हो।।

- डॉ. परमानन्द जड़िया
५१, खत्री टोला, मशकंगज,
लखनऊ-१८

प्राणि मात्र से प्रेम हो

धर्म-कर्म का मर्म, महावीर ने है दिया।
हिंसा से कर शर्म, प्राणि मात्र से प्रेम हो।।
मांस-भक्ष श्रीमान्! स्वास्थ्य ह्रास मत कीजिये।
उदर न कब्रिस्तान, कभी बनायें स्वयं का।।
हिंसा का परित्याग, प्राणि मात्र हित है सुखद।
पर पीड़ा है आग, जो विवेक देती जला।।
लोभ विपति का मूल, करें लोभ मत भूलकर।
रखता फल प्रतिकूल, यह सदैव ही सामने।।
भूल न करिये गर्व, गर्व पाप का बाप है।
ग्रन्थ बताते सर्व, रहिये सदा विनम्र बन।।

- श्री दयानन्द जड़िया 'अबोध'
३६०/२६, हाता नूरबेग,
सआदतगंज, लखनऊ

ऐसा कहीं बसन्त नहीं है

पतझड़ से जो बच पाया हो
ऐसा कहीं बसन्त नहीं है।
केवल सुखमय ही सुखमय हो
ऐसा कोई अन्त नहीं है।।
जीवन सुख-दुख का मिश्रण है
सुख में दुख का वेष छिपा है।
और दुखों के गहरे अन्तर में
सुखमय परिवेश छिपा है।।
सुख आया है तो जायेगा
दुख भी यहां अनन्त नहीं है।
पतझड़ से जो बच पाया हो
ऐसा कहीं बसन्त नहीं है।।
तपकर ही तो सिद्ध तपस्वी
आत्म सुधा रस को पाते हैं।
दुख सुख में सम स्थिर रहकर
उनके पार चले जाते हैं।।
दुख ज्वाला में दहा न हो जो
ऐसा कोई सन्त नहीं है।
पतझड़ से जो बच पाया हो
ऐसा कहीं बसन्त नहीं है।।
कोमल सुमनों की शैय्या पर
कवि के प्राण जला करते हैं।
और दहकते अंगारों पर
कवि के प्राण पला करते हैं।।
अन्तर्व्यथा न हो यदि कवि की
तो कविता रसवन्त नहीं है।
पतझड़ से जो बच पाया हो
ऐसा कहीं बसन्त नहीं है।।
मर्यादा पुरुषोत्तम रघुवर
को भी जग में त्राण मिला था।
सिंहासन मिलते मिलते भी
कठोर बनवास मिला था।।
दुनिया में आकर दुख से
बच सके स्वयं भगवन्त नहीं है।
पतझड़ से जो बच पाया हो
ऐसा कहीं बसन्त कहीं है।।

– डॉ. महावीर प्रसाद जैन 'प्रशान्त'
डी-११/६ राजेन्द्र नगर,
लखनऊ-४

हृदय रोग का उपचार

यह जीवन जीने के लिये है। इसे संवार कर रखें तभी यह साथ देगा भोगने में ही नहीं, साधना में भी। आज के व्यस्त और तनावपूर्ण जीवन में हृदयरोग एक आम बात हो गई है। उसके कुछ उपचार नीचे सुझाये जा रहे हैं-

हार्ट पेंशंट जिन्हें गठिया की शिकायत नहीं है काले अंगूरों का ताजा जूस एक बड़ा गिलास रोज एक महीना पियें, दिन में २-३ बजे के करीब। फिर नपवायें धमनियों में जमाव की स्थिति। गजब का नुस्खा है। क्योंकि ठंडा होता है इसलिये गठिया वालों के लिये नहीं। थोड़ा सा पीने का सोडावाटर भी मिला लें तो अधिक लाभकारी होगा। एक ही समय निश्चित कर लें दिन का। अच्छा हो यदि जूस पीने के एक घंटा पहले और बाद तक कुछ और न लें।

धमनियों में से कोलेस्ट्रोल का जमाव साफ हो जायेगा।

एक महीने के बाद भी पीयें तो इस जायकेदार पेय से कोई नुकसान नहीं है। इसमें मिलाना कुछ नहीं है मसाला आदि।

इसी से रंग में मिलता पत्ता गोभी बाजार में आता है। उसका प्रयोग सलाद में करें। चपाती में इसे कद्दूकस करा भरकर सुबह नाश्ते में, भोजन में खायें। चपाती फैला लें। उस पर यह गोभी कद्दूकस किया खूब सारा फैला लें। फिर चपाती को गोल बेलन जैसा रोल कर लें और काट काट कर दांतों से खायें। चाहें चपाती पर पहले धनिया की चटनी लगा लें।

जामुन के मौसम में रोज खूब जामुन खायें। आजकल जामनी रंग की गाजर भी आती है। सलाद में खूब खायें। प्रयास करें ताजा खाने का। इसमें का रस गुणकारी है।

शुगर के मरीज अधिक जानकारी हेतु मुझसे संपर्क कर सकते हैं।

- साहू शैलेन्द्र कुमार जैन, एडवोकेट
शेखपेन स्ट्रीट, खुर्जा (उ.प्र.) फोन २४१३२९

समाचार विमर्श

बूचड़खानों में बूढ़े बैल-सांड काटे जाने पर प्रतिबन्ध-उच्चतम न्यायालय का निर्णय

सिविल अपील सं. ४६३७-४०/१६६८-गुजरात स्टेट बनाम मिर्जापुर कुरैशी कस्साब समस्त एवं अन्य; सिविल अपील सं. ४६४१-४४/१६६८- श्री अहिंसा आर्मी मानव कल्याण जीवदया चैरिटेबिल ट्रस्ट बनाम मिर्जापुर मोती कुरैशी कस्साब जमात, अहमदाबाद एवं अन्य; तथा सिविल अपील सं. ४६४५/१६६८-अखिल भारत गौसेवा संघ बनाम मिर्जापुर मोती कुरैशी कस्साब जमात, अहमदाबाद एवं अन्य सम्बन्धी याचिकाओं पर सम्यक् विचारोपरान्त उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश रमेशचन्द्र लाहोटी की अध्यक्षता वाली सात जजों की संविधान पीठ ने २६ अक्तूबर, २००५ ई. को ६:१ न्यायाधीशों के बहुमत से अपने १३५ पृष्ठीय निर्णय में गुजरात सरकार के 'दि बाम्बे एनिमल प्रिजर्वेशन (गुजरात अमेण्डमेन्ट) एक्ट, १६६४ (गुजरात एक्ट नं. १६६४ का ४) को सही करार देते हुए बूढ़े बैलों और सांडों की हत्या पर प्रतिबन्ध लगा दिया है और बूढ़े गौवंश की हत्या करने के अधिकार को जायज ठहराने वाले गुजरात उच्च न्यायालय के कसाइयों के पक्ष में दिये गये पूर्व निर्णय को निरस्त कर दिया है।

उच्चतम न्यायालय का यह निर्णय स्वागतयोग्य है। किन्तु अच्छा होगा कि न केवल बूढ़े गौवंश की अपितु सभी पशुओं की हत्या प्रतिबंधित की जाय और सभी जीवों को उनके जीने का अधिकार प्रदान किया जाय। साथ ही हमारे देश के बूचडखानों से विदेशों को जो हलाल का मांस निर्यात होता है, उसे भी प्रतिबंधित किया जाय। हलाल एक क्रूरतम कत्ल प्रक्रिया है जिसमें निरीह पशुओं को अपने रक्त की अन्तिम बूंद तक तिल-तिल मर्मान्तक पीड़ा भुगतनी पड़ती है जो किसी प्रकार भी उचित नहीं है।

- रमा कान्त जैन

समाचार विविधा

जैन विद्या पर राष्ट्रीय संगोष्ठी

ग्वालियर (म.प्र.) में २६-२७ नवम्बर, २००५ ई. को एक द्विदिवसीय राष्ट्रीय शोध संगोष्ठी जैन विद्या पर सम्पन्न हुई। इस संगोष्ठी में देश के विभिन्न अंचलों से आये २२ विद्वानों ने जैन विद्या के विभिन्न पक्षों पर अपने शोध-पत्र प्रस्तुत किये। उपाध्याय श्री ज्ञानसागर महाराज की प्रेरणा से आयोजित इस संगोष्ठी के संयोजक जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वलियर की इतिहास अध्ययनशाला के समन्वयक डॉ. एस. के. द्विवेदी थे।

अ. भा. जैन विद्वत् सम्मेलन

श्रवणबेलगोल (कर्णाटक) में भ. गोम्मटेश्वर बाहुबली महामस्तकाभिषेक-२००६ की पूर्व बेला में २८ दिसम्बर, २००५ से १ जनवरी, २००६ ई. तक पांच दिवसीय विद्वत् सम्मेलन सम्पन्न हुआ जिसमें देश के विभिन्न स्थानों से जैन विद्या के अध्येता दिगम्बर, श्वेताम्बर एवं जैनेतर १५० विद्वानों ने सहभागिता की और १२ सत्रों में १०८ शोध-पत्रों का वाचन हुआ। श्रवणबेलगोल जैन मठ के भट्टारक चारुकीर्ति स्वामीजी को कुशल नेतृत्व और डॉ. फूलचन्द्र जैन 'प्रेमी', वाराणसी, को इस सम्मेलन में संयोजन का श्रेय रहा।

स्व. श्री अजित प्रसाद जैन के चित्र का अनावरण

१ जनवरी, २००६ को तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र., द्वारा समिति के संस्थापक-महामंत्री एवं **शोधादर्श** पत्रिका के प्रधान सम्पादक रहे स्व. श्री अजित प्रसाद जैन का ८९ वां जन्म दिवस शोध पुस्तकालय, चारबाग, लखनऊ में श्री लूणकरण नाहर जैन की अध्यक्षता में मनाया गया । पाण्डुलिपि संरक्षण विशेषज्ञ डॉ. ओम प्रकाश अग्रवाल, मुख्य अतिथि रहे और वयोवृद्ध विद्वान् डॉ. पूर्णचन्द्र जैन विशिष्ट अतिथि। कार्यक्रम का संचालन समिति के महामंत्री श्री रमा कान्त जैन ने किया। 'महावीराष्टक' द्वारा मंगलाचरण से कार्यक्रम का शुभारंभ हुआ। मुख्य अतिथि डॉ. अग्रवाल ने शोध पुस्तकालय में श्री अजित प्रसाद जैन के चित्र का अनावरण किया, अध्यक्ष ने चित्र पर माला पहनाई और विशिष्ट अतिथि ने दीप-प्रज्ज्वलन किया। तदनन्तर क्रमशः डॉ. शशि कान्त, डॉ. पूर्णचन्द्र जैन, डॉ. ओमप्रकाश अग्रवाल, श्री प्रकाशचंद्र जैन 'दास', श्री गया प्रसाद तिवारी 'मानस', श्री नरेश कुमार जैन, श्री आदित्य जैन (कानपुर), श्री डी. के. जैन, श्री मनोज कुमार जैन, श्री नरेशचन्द्र जैन, श्री मयंक जैन (दिल्ली), डॉ. रामसजीवन शुक्ल (कोंच) और श्री लणूकरण नाहर जैन ने श्री अजित प्रसाद जी के गुणों का स्मरण करते हुए उन्हें श्रद्धा-सुमन

अर्पित किये। श्री नाहर ने महावीर की वन्दना में भजन भी प्रस्तुत किया और चि. मधुरिम एवं कु. पलक द्वारा 'जय महावीर नमो' के समवेत गायन से कार्यक्रम का समापन हुआ।

तत्त्वार्थ पर विद्वत् संगोष्ठी

नवनिर्मित सर्वोदय जैन तीर्थक्षेत्र पलवल (फरीदाबाद) में २७ से २९ जनवरी, २००६ ई. तक एक त्रिदिवसीय संगोष्ठी आचार्य उमास्वामी रचित **'तत्त्वार्थसूत्र'** पर सम्पन्न हुई जिसमें देश के विभिन्न भागों से पधारे ३० विद्वानों ने ६ सत्रों में अपने शोधपूर्ण आलेखों का वाचन किया। संगोष्ठी की अध्यक्षता डॉ. श्रेयांस कुमार जैन, बड़ौत ने की। निर्देशन डॉ. शीतलचंद जैन, जयपुर, का रहा तथा संयोजन का श्रेय पं. सुनील जैन 'संचय', नरवां, एवं पं. आशीष जैन शास्त्री, शाहगढ़, को मिला।

भारतीय संस्कृति पर संगोष्ठी

६ फरवरी, २००६ ई. को ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ में श्रद्धेय इतिहास-मनीषी विद्यावारिधि डॉ. ज्योति प्रसाद जैन के ९५वें जन्म दिवस पर 'भारतीय संस्कृति' विषय पर संगोष्ठी हुई। कार्यक्रम की अध्यक्षता श्री लूणकरण नाहर जैन ने की, विशिष्ट अतिथि रहे पं. विष्णुदत्त शर्मा और मुख्य वक्ता डॉ. शशि कान्त। कार्यक्रम का संचालन ज्योति प्रसाद जैन ट्रस्ट के सचिव श्री रमा कान्त जैन ने किया। श्रद्धेय डॉक्टर साहब के चित्र पर माल्यार्पण और दीप-प्रज्ज्वलन के अनन्तर मंगलाचरण स्वरूप डॉक्टर साहब द्वारा रचित 'वीतराग स्वरूपम्' और 'जय महावीर नमो' के समवेत गायन से संगोष्ठी का शुभारंभ हुआ। श्री रमा कान्त ने डॉक्टर साहब द्वारा फरवरी १९५० ई. में निबद्ध लेख 'भारतीय संस्कृति' के अंश का वाचन किया। तदनन्तर प्रबुद्ध चिन्तक विद्वान् डॉ. शशि कान्त ने 'भारतीय संस्कृति-प्रेरणा स्रोत एवं आधारिक तत्व' विषयक वार्ता द्वारा विषय का विशद् विवेचन प्रस्तुत किया। श्री बी. डी. अग्रवाल, श्रीमती सुधा जिन्दल, श्री नरेश चन्द्र जैन, श्री अनिल बांके और पं. विष्णु दत्त शर्मा ने चर्चा द्वारा विषय को विस्तार दिया। संगोष्ठी में उपस्थित सभी ने श्रद्धेय डॉक्टर साहब के प्रति अपने भावभीने उद्गार और उनसे सम्बंधित संस्मरण प्रस्तुत कर उन्हें श्रद्धा-सुमन अर्पित किये। डॉ. महावीर प्रसाद जैन 'प्रशान्त' ने अपनी काव्यांजलि से डॉ. ज्योति प्रसाद जैन को नमन किया। जहां इंजी. राजीवकान्त ने सामयिक परिदृश्य पर चिन्तनप्रद रचना 'खुले ऐसी मधुशाला' और बेबी पलक जैन ने अपनी बालसुलभ रचना 'घड़ी' प्रस्तुत कर श्रोताओं को मोहा, वहीं हास्य-व्यंग्य कवि श्री अनिल 'बांके' और श्री रमा कान्त ने अपनी क्षणिकाओं पर ठहाके लगवाये। श्री नाहर ने श्रुतिमधुर आध्यात्मिक भजन 'अब सौंप दिया इस जीवन का सब भार तुम्हारे हाथों में' सुनाकर वातावरण को रससिक्त किया।

साहित्य-सत्कार

(१) प्रवचनसार प्राभृत (श्री कुन्दकुन्ददेव कृत) : हिन्दी टीकाकार- श्री निर्मल कुमार गोइल, सम्पादक श्री महावीर प्रसाद जैन; प्र. श्री दिगम्बर जैन साहित्य प्रकाशन समिति, ३३२, स्कीम नं. १०, अलवर (राजस्थान)-३०१००१; नवम्बर २००५ ई.; पृ. २७७+xxii; मूल्य रु. ५०/-

आचार्यप्रवर श्री कुन्दकुन्द ने प्रथम शती ईस्वी में **प्रवचनसार प्राभृत** की प्राकृत भाषा में रचना की थी। इसमें जैन दर्शन के आत्मतत्व सम्बन्धी सिद्धान्त का विवेचन किया गया है। टीकाकार श्री निर्मल कुमार गोइल ने अपनी प्रस्तावना में यह बताया है कि **प्रवचनसार** में वर्णित विषय को कैसे समझा जाए। **प्रवचनसार** की २७५ गाथाओं का मूल प्राकृत तथा उसका संस्कृत रूपान्तर, अन्वयार्थ और हिन्दी में अर्थ देकर टीकाकार ने विषय को बोधगम्य बनाने का प्रयास किया है। विषय गूढ़, सैद्धान्तिक और दार्शनिक है। इस गूढ़ विषय में रुचि रखने वाले जिज्ञासुओं के लिए यह टीका विषय को सुबोध करने में उपयोगी होगी।

(२) संयुत्तनिकायपालि : एक अध्ययन : लेखक- डॉ. विजय कुमार जैन; प्र. मैत्री प्रकाशन, ३/६५, विकासखण्ड, गोमतीनगर, लखनऊ; २००४ ई.; पृ. २०७, मूल्य रु. २००/-

भगवान बुद्ध के वचनों को पालि साहित्य में **त्रिपिटक** में निबद्ध किया गया है। **त्रिपिटक** क्रमशः **सुत्त पिटक, विनय पिटक** और **अभिधम्म पिटक** के नाम से अभिज्ञात है। **सुत्त पिटक** में ५ निकाय हैं जो **दीर्घनिकाय, मज्झिमनिकाय, संयुत्तनिकाय, अंगुत्तरनिकाय** और **खुद्दकनिकाय** के नाम से जानी जाती हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ में ७ परिच्छेदों में **संयुत्तनिकाय** में विवेचित विषय का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इन परिच्छेदों में क्रमशः **संयुत्तनिकाय** का सामान्य परिचय, बुद्ध गाथा, धर्म, दर्शन, संघ, देशना और प्रकीर्णक के अन्तर्गत प्रतिपाद्य विषय की विवेचना की गई है। प्रारम्भ में भूमिका है और अन्त में उपसंहार तथा संदर्भ ग्रंथ विवरण हैं। यह अध्ययन डॉ. विजय कुमार जैन द्वारा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में पी-एच.डी. के लिए शोध प्रबन्ध के रूप में प्रस्तुत किया गया था।

संयुत्तनिकाय में भगवान बुद्ध के ४५ वर्षीय बुद्ध जीवनकाल में उपदेशित सुत्त विषय के अनुसार प्रमुख शीर्षकों में संग्रहीत किए गए हैं। इन सुत्तों का भगवान बुद्ध के उपदेशों के अध्ययन की दृष्टि से विशेष महत्व है। इस निकाय में संकलित शिक्षाओं को वर्गीकृत करके सरल भाषा में प्रस्तुत करने के लिए लेखक साधुवाद के पात्र हैं।

- डॉ. शशि कान्त

(३) रक्षा बंधन और दीपावली : ले. डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल; प्र. पं. टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर; २००५ ई.; पृ. ४८

६२ पुस्तकों के प्रणेता ७१ वर्षीय डॉ. भारिल्ल ने जैन-परम्परा में रक्षाबन्धन एवं दीपावली पर्वों के महत्व एवं तत्सम्बन्धी विद्यमान कतिपय शंकाओं का समाधान अपनी दृष्टि से इस पुस्तक में प्रस्तुत किया है। विषय छह भागों में विभक्त है, जिनमें प्रमुखतः दो भाग दोनों पर्वों के विषय में तथा दो अन्य भाग प्रश्नोत्तर के रूप में हैं। डॉ. भारिल्ल ने रक्षाबन्धन-पर्व पर मुनि-द्वय विष्णुकुमार एवं श्रुतसागर द्वारा पदानुरूप आचरण नहीं करने के कारण अकम्पनाचार्य की पूजा करने का अनुरोध किया है। जैन-परम्परा में दीपावली-पर्व मनाने, लड्डू चढ़ाने और दीपक प्रज्ज्वलन करने के सम्बन्ध में डाक्टर साहब के विचार निःसंदेह एक नया चिन्तन प्रस्तुत करते हैं। किन्तु उनको स्वीकार करने से पूर्व वृहत् विचार-मंथन अपेक्षित है। इसीलिए पुस्तक पठनीय है। इसका कलेवर आकर्षक है।

(४) जैन धर्म विज्ञान की कसौटी पर? या विज्ञान जैन धर्म की कसौटी पर? : ले. पंन्यास श्री नंदीघोष विजयजी गणि; प्र. भारतीय प्राचीन साहित्य वैज्ञानिक रहस्य अनुसंधान संस्था, अहमदाबाद; २००५ ई.; पृ.-१०४; मूल्य रु. ३०/-

लेखक पूज्य मुनि पंन्यास श्री नंदीघोष विजयजी गणि जैन-धर्म को न सिर्फ एक वैज्ञानिक-धर्म मानते हैं, अपितु उसके सिद्धान्तों को पूर्ण सत्य अर्थात् स्वयं विज्ञान स्वीकार करते हैं। इसीलिए वर्ष २००० ई. में उन्होंने गुजराती भाषा में "जैन दर्शननां वैज्ञानिक रहस्यो" पुस्तक प्रकाशित की थी, जिसका वर्ष २००१ ई. में अंग्रेजी संस्करण भी प्रकाशित हो चुका है अब हिन्दी-भाषी क्षेत्रों में और व्यापक प्रसार हेतु उसका प्रस्तुत संक्षिप्त हिन्दी संस्करण प्रकाशित किया गया है। इसमें विद्वान लेखक ने मत व्यक्त किया है कि वैज्ञानिक अनुसंधान आज जिन निष्कर्षों को प्राप्त कर रहे हैं उन्हें

तो जैन-धर्म में हजारों वर्ष पूर्व ही प्रतिपादित किया जा चुका है। जैन व जैनेतर दोनों समाजों में जैन धर्म-दर्शन को बेहतर ढंग से समझाने में यह पुस्तक सफल होगी, ऐसा विश्वास है।

(५) प्रतिबोध : ले. स्व. विरधीलाल सेठी; सं. श्री अखिल बंसल एवं श्री नाभिराय जैन; प्र. श्री अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद् ट्रस्ट, जयपुर; २००४ ई.; पृ. २०८; मूल्य चिन्तन-मनन।

समाज सुधारक एवं क्रान्तिकारी चिन्तक-लेखक स्व. श्री विरधीलाल सेठी जी की जन्म-शताब्दी के अवसर पर उनके प्रकाशित एवं अप्रकाशित ५० लेखों का प्रस्तुत संकलन तीन खण्डों यथा-धार्मिक, राजनैतिक एवं सामाजिक में व्यवस्थित है।

संकलन का प्राचीनतम लेख "अपरिग्रहवाद और समाजवाद" है। इसमें सेठी जी ने अपरिग्रहवाद और समाजवाद दोनों का लक्ष्य व्यक्ति एवं समाज का विकास मानते हुए समाजवाद के आदर्श की प्राप्ति हेतु समाज की सत्ता अपरिग्रहवादियों के हाथों में होना आवश्यक बताया है जबकि यथार्थ में स्थिति भिन्न है।

संकलन का नवीनतम आलेख "अहिंसावादी जैनों को चुनौती" है। इसमें हिंसाजन्य औषधियों, साबुन, केक, क्रीम, जैली, आइस्क्रीम, जूता आदि वस्तुओं के उपयोग नहीं करने तथा मांसाहार का सेवन करने वाले नेताओं आदि को अपने समारोहों में आमंत्रित नहीं करने और वोट नहीं देने तथा अण्डे-मांस आदि का आकाशवाणी व दूरदर्शन पर सरकार द्वारा प्रचार नहीं करने के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण सुझाव दिये गये हैं।

संकलन में समाहित सभी लेख समाज को झकझोरने एवं आत्म-मंथन को प्रेरित करते हैं। निःसंदेह पुस्तक पठनीय है।

- अंशु जैन 'अमर'

(६) अमृत वाणी : संकलनकर्ता मुनि श्री अनंतानंद सागर; सम्पादक ब्र. संदीप 'सरल'; प्र. अनेकान्त ज्ञान मंदिर शोध संस्थान, बीना (सागर)-४७०११३; २००५ ई.; पृ. १२७; मूल्य सदुपयोग।

संयमामृतशताष्टक, प्रवचनामृतशताष्टक, ज्ञानामृतशताष्टक, निजात्मामृतशताष्टक, आरोग्यामृतशताष्टक, जन्ममरणनाशकामृतशताष्टक तथा शांति अमृत शताष्टक इन

सात अध्यायों में विभाजित और प्रत्येक में १०८ सूक्तियां संजोये गागर में सगर सी यह आध्यात्मिक एवं नीतिपरक लघु कृति मूलतः ब्र. डॉ. माणिकचंद.जी (वर्तमान मुनि अनंतानंदसागरजी) को १९९३ ई. में दिग. जैन मन्दिर भानुपरा (म.प्र.) के शास्त्र भण्डार से प्राप्त हुई थी। मुनिश्री ने इसे संशोधित और परिवर्द्धित किया। इस जनोपयोगी पुस्तक के प्रकाशन हेतु ब्र. संदीप 'सरल' जी साधुवाद के पात्र हैं।

(७) आचार्य समन्तभद्र कृत रत्नकरण्ड श्रावकाचारः हिन्दी अनुवाद-डॉ. जय कुमार जलज; प्र. हिन्दी ग्रन्थ कार्यालय, ६, हीराबाग, सी.पी. टैंक, मुम्बई- ४००००४; २००६ ई.; पृ. ४८; मूल्य रु. ४०/-

दूसरी शती ईस्वी में हुए स्वामी समन्तभद्र द्वारा संस्कृत में १५० श्लोकों में निबद्ध श्रावकों (गृहस्थों) की आचार संहिता, जो **'रत्नकरण्ड श्रावकाचार'** के नाम से विख्यात है, का सीधा सरल हिन्दी अनुवाद पाठकों के हितार्थ आलोच्य पुस्तिका में प्रस्तुत किया गया है। एतदर्थ अनुवादक और प्रकाशक दोनों साधुवाद के पात्र हैं।

(८) आचार्य पूज्यपाद कृत समाधितन्त्र : हिन्दी अनुवाद- डॉ. जय कुमार जलज; प्र. हिन्दी ग्रन्थ कार्यालय, ६, हीराबाग, सी.पी. टैंक, मुम्बई-४००००४; २००६ ई.; पृ. ३२; मूल्य रु. ३०/-

पांचवी शती ईस्वी में हुए आचार्य देवनन्दी पूज्यपाद ने निर्मल और अतीन्द्रिय सुख के आकांक्षी व्यक्तियों को आत्मा का सही स्वरूप समझाने हेतु संस्कृत में १०५ श्लोकों में **'समाधितन्त्र'** की रचना की थी। इस गूढ़ विषय को अध्यात्मरसिक हिन्दी पाठकों को सरल-सुबोध रूप में प्रस्तुत करने का स्तुत्य कार्य अनुवादक और प्रकाशक द्वारा किया गया है।

(९) नींव का पत्थर : लेखक पं. रतनचन्द भारिल्ल; प्र. पं. टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, ए-४, बापूनगर, जयपुर-३०२०१५; २००५ ई.; पृ. १२६; मूल्य रु. ८/-

अध्यात्म-रत्नाकर पं. रतनचन्द भारिल्ल जी की लेखनी से प्रसूत उपन्यास रूप में निबद्ध इस दार्शनिक कृति में जैन धर्म के मूल सिद्धान्त वस्तुस्वातंत्र्य का विवेचन किया गया है। कथा की रोचकता और शैली की सरलता पाठक का मन बांधे रखती है। इस अनुपम कृति के प्रणयन हेतु भारिल्ल जी साधुवाद के पात्र हैं।

(१०) सम्यक्-अर्चना : मूल मराठी लेखिका प. पू. क्षु. १०५ श्री सुशीलमती माताजी एवं श्री सुव्रता माताजी; हिन्दी भावानुवादिका प्रा. सौ. लीलावती जैन; प्र. धर्ममंगल, १ सलील अपार्ट, ५७ सानेवाडी, औंध-पुणे-४११००७; २००५ ई.; पृ. ८४; मूल्य स्वाध्याय।

श्रावक के छह आवश्यक कृत्यों में प्रथम स्थान देव पूजा को दिया गया है। 'वंदे तद्गुणलब्धये' से लेकर 'वंदे स्वगुणलब्धये' तक जीव स्वयं को परिणत करे यही 'सम्यक् अर्चना' है। इस सम्यक् अर्चना' अर्थात् ध्यान सहित पूजा का सही रूप बताने वाली इस लघु पुस्तिका का प्रणयन उपर्युक्त माताजी द्वय द्वारा मराठी में किया गया था। हिन्दी पाठकों के लाभार्थ इसका हिन्दी भावानुवाद 'धर्ममंगल' की विदुषी सम्पादिका लीलावती जैन द्वारा किया गया है। पुस्तिका की लोकप्रियता के कारण मराठी में दो और हिन्दी में ३ आवृत्तियां प्रकाशित हो चुकी हैं।

(११) सिद्धलोक एवं सिद्धत्व साधना के सूत्र : ले. डॉ. राजेन्द्र कुमार बंसल; सं. श्री मनोहरलाल मारवडकर'; प्र. श्री अ.भा. दिग. जैन विद्वत्परिषद् ट्रस्ट, १२६, जादोन नगर 'बी', स्टेशन रोड, दुर्गापुरा, जयपुर; २००५ ई., पृ. ६४; मूल्य रु. १०/-

आचार्य यतिवृषभ कृत **'तिलोयपण्णत्ती'** के नवम अधिकार 'सिद्धलोक प्रज्ञप्ति' की आचार्य कुन्दकुन्द के पंच परमागमो की कतिपय गाथाओं से समानता लक्षित कर विद्वान मनीषी डॉ. राजेन्द्र कुमार बंसल ने उनका तुलनात्मक अध्ययन कुशलतापूर्वक आलोच्य कृति में प्रस्तुत किया है। इसके लिये लेखक साधुवाद के पात्र हैं।

(१२) जिनेन्द्र पूजांजलि : रचनाकार श्री अखिल बंसल; प्र. समन्वयवाणी प्रकाशन, १२६ जादोन नगर बी, स्टेशन रोड, दुर्गापुरा, जयपुर; २००५ ई., पृ. १६; मूल्य पठन-पाठन।

अपने सुपुत्र चि. अंशुल के सौ. डॉ. श्रद्धा संग पावन परिणय पर भेंट स्वरूप प्रस्तुत इस लघु पुस्तिका में बन्धुवर अखिल बंसल जी ने स्वरचित देव-शास्त्र-गुरु पूजन और श्री महावीर पूजन को समाहित किया है। दोनों ही पूजन उनकी भक्ति-भावना और काव्य-प्रतिभा की परिचायक हैं।

सात अध्यायों में विभाजित और प्रत्येक में १०८ सूक्तियां संजोये गागर में सगर सी यह आध्यात्मिक एवं नीतिपरक लघु कृति मूलतः ब्र. डॉ. माणिकचंद जी (वर्तमान मुनि अनंतानंदसागरजी) को १९९३ ई. में दिग. जैन मन्दिर भानुपरा (म.प्र.) के शास्त्र भण्डार से प्राप्त हुई थी। मुनिश्री ने इसे संशोधित और परिवर्द्धित किया। इस जनोपयोगी पुस्तक के प्रकाशन हेतु ब्र. संदीप 'सरल' जी साधुवाद के पात्र हैं।

(७) आचार्य समन्तभद्र कृत रत्नकरण्ड श्रावकाचारः हिन्दी अनुवाद-डॉ. जय कुमार जलज; प्र. हिन्दी ग्रन्थ कार्यालय, ६, हीराबाग, सी.पी. टैंक, मुम्बई- ४००००४; २००६ ई.; पृ. ४८; मूल्य रु. ४०/-

दूसरी शती ईस्वी में हुए स्वामी समन्तभद्र द्वारा संस्कृत में १५० श्लोकों में निबद्ध श्रावकों (गृहस्थों) की आचार संहिता, जो **'रत्नकरण्ड श्रावकाचार'** के नाम से विख्यात है, का सीधा सरल हिन्दी अनुवाद पाठकों के हितार्थ आलोच्य पुस्तिका में प्रस्तुत किया गया है। एतदर्थ अनुवादक और प्रकाशक दोनों साधुवाद के पात्र हैं।

(८) आचार्य पूज्यपाद कृत समाधितन्त्र : हिन्दी अनुवाद- डॉ. जय कुमार जलज; प्र. हिन्दी ग्रन्थ कार्यालय, ६, हीराबाग, सी.पी. टैंक, मुम्बई-४००००४; २००६ ई.; पृ. ३२; मूल्य रु. ३०/-

पांचवी शती ईस्वी में हुए आचार्य देवनन्दी पूज्यपाद ने निर्मल और अतीन्द्रिय सुख के आकांक्षी व्यक्तियों को आत्मा का सही स्वरूप समझाने हेतु संस्कृत में १०५ श्लोकों में **'समाधितन्त्र'** की रचना की थी। इस गूढ़ विषय को अध्यात्मरसिक हिन्दी पाठकों को सरल-सुबोध रूप में प्रस्तुत करने का स्तुत्य कार्य अनुवादक और प्रकाशक द्वारा किया गया है।

(९) नींव का पत्थर : लेखक पं. रतनचन्द भारिल्ल; प्र. पं. टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, ए-४, बापूनगर, जयपुर-३०२०१५; २००५ ई.; पृ. १२६; मूल्य रु. ८/-

अध्यात्म-रत्नाकर पं. रतनचन्द भारिल्ल जी की लेखनी से प्रसूत उपन्यास रूप में निबद्ध इस दार्शनिक कृति में जैन धर्म के मूल सिद्धान्त वस्तुस्वातंत्र्य का विवेचन किया गया है। कथा की रोचकता और शैली की सरलता पाठक का मन बांधे रखती है। इस अनुपम कृति के प्रणयन हेतु भारिल्ल जी साधुवाद के पात्र हैं।

(१०) सम्यक्-अर्चना : मूल मराठी लेखिका प. पू. क्षु. १०५ श्री सुशीलमती माताजी एवं श्री सुव्रता माताजी; हिन्दी भावानुवादिका प्रा. सौ. लीलावती जैन; प्र. धर्ममंगल, १ सलील अपार्ट, ५७ सानेवाडी, औंध-पुणे-४११००७; २००५ ई.; पृ. ८४; मूल्य स्वाध्याय।

श्रावक के छह आवश्यक कृत्यों में प्रथम स्थान देव पूजा को दिया गया है। 'वंदे तद्गुणलब्धये' से लेकर 'वंदे स्वगुणलब्धये' तक जीव स्वयं को परिणत करे यही 'सम्यक् अर्चना' है। इस सम्यक् अर्चना' अर्थात् ध्यान सहित पूजा का सही रूप बताने वाली इस लघु पुस्तिका का प्रणयन उपर्युक्त माताजी द्वय द्वारा मराठी में किया गया था। हिन्दी पाठकों के लाभार्थ इसका हिन्दी भावानुवाद 'धर्ममंगल' की विदुषी सम्पादिका लीलावती जैन द्वारा किया गया है। पुस्तिका की लोकप्रियता के कारण मराठी में दो और हिन्दी में ३ आवृत्तियां प्रकाशित हो चुकी हैं।

(११) सिद्धलोक एवं सिद्धत्व साधना के सूत्र : ले. डॉ. राजेन्द्र कुमार बंसल; सं. श्री मनोहरलाल मारवडकर'; प्र. श्री अ.भा. दिग. जैन विद्वत्परिषद् ट्रस्ट, १२६, जादोन नगर 'बी', स्टेशन रोड, दुर्गापुरा, जयपुर; २००५ ई., पृ. ६४; मूल्य रु. १०/-

आचार्य यतिवृषभ कृत **'तिलोयपण्णत्ती'** के नवम अधिकार 'सिद्धलोक प्रज्ञप्ति' की आचार्य कुन्दकुन्द के पंच परमागमो की कतिपय गाथाओं से समानता लक्षित कर विद्वान मनीषी डॉ. राजेन्द्र कुमार बंसल ने उनका तुलनात्मक अध्ययन कुशलतापूर्वक आलोच्य कृति में प्रस्तुत किया है। इसके लिये लेखक साधुवाद के पात्र हैं।

(१२) जिनेन्द्र पूजांजलि : रचनाकार श्री अखिल बंसल; प्र. समन्वयवाणी प्रकाशन, १२६ जादोन नगर बी, स्टेशन रोड, दुर्गापुरा, जयपुर; २००५ ई., पृ. १६; मूल्य पठन-पाठन।

अपने सुपुत्र चि. अंशुल के सौ. डॉ. श्रद्धा संग पावन परिणय पर भेंट स्वरूप प्रस्तुत इस लघु पुस्तिका में बन्धुवर अखिल बंसल जी ने स्वरचित देव-शास्त्र-गुरु पूजन और श्री महावीर पूजन को समाहित किया है। दोनों ही पूजन उनकी भक्ति-भावना और काव्य-प्रतिभा की परिचायक हैं।

(१३) श्रावकाचार : दिशा और दृष्टिः सम्पादक श्री अखिल बंसल; सह सम्पादक- डॉ. श्रेयांसकुमार सिंघई; प्र. श्री अ.भा. दिग. जैन विद्वत्परिषद ट्रस्ट, १२६, जादोन नगर बी, स्टेशन रोड, दुर्गापुरा, जयपुर; २००३ ई.; पृ. १७६; मू. रु. १५/-

सिद्धार्थनगर में १४ से १७ अगस्त, २००३ ई. को मुनिश्री उर्जयन्तसागरजी के सान्निध्य में सम्पन्न 'श्रावकाचार संगोष्ठी' में देश के २६ विद्वान मनीषियों द्वारा विषय से सम्बन्धित जिन सारगर्भित आलेखों का वाचन किया गया था उनका सुसम्पादित संकलन प्रस्तुत पुस्तक में है। श्रावकों (जैन गृहस्थों) का आचरण किस प्रकार का होना चाहिये, उसे समझने के लिये पुस्तक में प्रस्तुत विचार-वीथिका उपयोगी सिद्ध होगी।

(१४) श्री जिनतारण त्रिवेणी (तीन-बत्तीसी) और छद्मस्थ वाणी- सारः रचयिता श्री जिन तारण स्वामी; प्र. भारतीय ज्ञानपीठ, १८, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली ११०००३; २००५ ई.; पृ. १३४; मू. रु. ६०/-

पन्द्रहवी शती ईस्वी में मध्य भारत में हुए आध्यात्मिक जैन सन्त श्री जिनतारण स्वामी द्वारा सम्यक् दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र का प्रतिपादन करने वाली ३२-३२ पद्यों में **श्री मालारोहण, श्री पण्डितपूजा** और **श्री कमलबत्तीसी** की रचना की गई थी। ये **'श्री जिन तारण त्रिवेणी'** और **'तीन-बत्तीसी'** नाम से भी विख्यात हैं। ब्र. सीतल प्रसाद जी द्वारा किया गया हिन्दी अनुवाद और ब्र. जयसागर कृत हिन्दी पद्यानुवाद के साथ छतरपुर के एडवोकेट श्री दशरथ जैन द्वारा किया गया अंग्रेजी अनुवाद प्रस्तुत संस्करण में मुमुक्षुओं के हितार्थ समाहित है।

साथ ही स्वामी जी की एक अन्य कृति **छद्मस्थवाणी** का श्री दशरथ जैन द्वारा हिन्दी में सार-संक्षेप भी इसमें दिया गया है। इस कृति के सम्बन्ध में जस्टिस एम. एल. जैन द्वारा लिखित आलेख 'समय-शाह', जो **शोधादर्श** ४४ (जुलाई, २००१ ई.) में पृ. ४६-५३ पर प्रकाशित हो चुका है, भी देकर विषय की चर्चा को बोधगम्य कर दिया है।

(15) The Basic Thought of Bhagvan Mahavir : by Dr. Jaykumar Jalaj; Pub. Prakrit Bharati Academy, Jaipur; 4th edition 2005; PP. 32; Price Rs. 20/-

The present concise book on the basic thought of Bhagavan Vardhaman Mahavir, the 24th Tirthankar, is the English translation by Shri G. F. Burhanpurkar of the authour's original Hindi text 'Bhagavan Mahavir Ka Buniyadi Chintan' published by M.P. Sahitya Parishad, Bhopal in 2002. Dr. J. K. Jalaj is an acclaimed writer and this treatise on Mahavir from his pen has received wide popularity in no time.

(१६) आलापपद्धतिः रचयिता आ. देवसेन; अनु. व टीकाकार पं. रतनचन्द जैन मुख्तार'; प्र. अनेकान्त ज्ञान मंदिर शोध संस्थान बीना (सागर)-४७०११३; तृ. सं. २००५ ई.; पृ. २१८

आलापपद्धति का अपरनाम **द्रव्यानुयोग प्रवेशिका** है। इसमें आ. देवसेन, संभवतया १०वी शती ईस्वी में धारा नगरी में हुए **दर्शनसार** के रचयिता, ने जैनागम के मूलभूत सिद्धान्तों यथा-द्रव्य, गुण, पर्याय और नय का प्रतिपादन संस्कृत भाषा में २२८ सूत्रों में किया है। करणानुयोग के मर्मज्ञ विद्वान पं. रतनचंद्र मुख्तार ने इस ग्रन्थ की हिन्दी टीका एवं विस्तृत विवेचना कर विषय को जैनागम के अध्येताओं के लिये बोधगम्य बनाया है। प्रकाशन हेतु अनेकान्त ज्ञान मंदिर साधुवाद का पात्र है।

(१७) प्रेरक बोधकथाएं : ले. (स्व.) महात्मा भगवानदीन; सम्पादन-संकलन श्री जमनालाल जैन; प्र. शुचिता प्रकाशन, अभय कुटीर, सारनाथ, वाराणसी-२२१००७; प्र.सं. २००५ ई.; पृ. ११२; मू. रु. ३०/-

डॉ. श्रीरंजनसूरिदेव की उपस्थापना और महात्मा भगवानदीन जी का **शोधादर्श** ५६ में प्रकाशित परिचय तथा उनकी लेखनी से सन् १९६० ई. में प्रसूत सैंतीस बोधप्रद लघु कथाओं का यह संकलन पाठकों, विशेषकर युवावर्ग, को स्वतन्त्र चिन्तन की प्रेरणा देने के सद्उद्देश्य से प्रकाशित किया गया है। महात्मा जी के अनन्य भक्त श्री जमनालाल जी ने उनकी इन मनोवैज्ञानिक कथाओं का प्रकाशन कर उनकी लेखनी को अमर करने का श्लाघनीय कार्य किया है।

(१८) अंतः पुकार (हाइकु-द्विशतक) : रचयिता श्री दयानन्द जड़िया 'अबोध'; प्र. त्रिमूर्ति-प्रकाशन लखनऊ; प्र.सं. २००६ ई.; पृ. ३२; मू. रु. ४०/-

साहित्य की विविध विधाओं में रचनापटु बन्धुवर अबोध जी ने जापानी छन्द हाइकु में भी अपना रचना कौशल दिखलाया है। दो सौ ग्यारह हाइकु छन्दों में कवि ने अपने अन्तस् के भक्तिभावों को कुशलतापूर्वक अभिव्यक्त किया है।

(१९) विद्रोही की आत्मकथा : ले. (स्व.) श्री चतुर्भुज शर्मा; सम्पादक श्री विष्णुदत्त शर्मा; प्र. तुलसी स्मारक समिति, ३३, पानदरीबा, लखनऊ; द्वि.सं. २००५ ई.; पृ. १९०; मू. रु. १००/-

४ सितम्बर, १९०० ई.को बुन्देलखण्ड में जालौन जिले के मोहाना ग्राम में गाँव के नम्बरदार के घर जन्मे श्री चतुर्भुज शर्मा वकालत पास करने के बाद शीघ्र ही अपने पिताजी व गुरुजी की इच्छा के विपरीत देश सेवा और समाजसेवा हेतु सक्रिय राजनीति में आ गये। वह प्रदेश के एक प्रभावशाली कांग्रेसी नेता बने और अनेक वर्ष तक प्रदेश सरकार में मंत्री पद को भी सुशोभित किया। उन्होंने ७५ वर्ष का जीवन जिया और अनेक संघर्षों का सामना किया। अपनी जीवन-कथा, जो उनके शब्दों में, इतिहास नहीं, उपन्यास भी नहीं, केवल संस्मरण नहीं और विशुद्ध घटना-वृत्त भी नहीं, अपितु उन सबका यत्किंचित् सम्मिश्रण है, के रूप में शर्मा जी ने यह आत्मकथा निबद्ध की थी जो सन् १९७० ई. में प्रकाशित हुई थी। स्वतन्त्रता संग्राम की कहानी समेटे यह पुस्तक वर्षों से अलभ्य थी। इसे पुनः अब प्रकाशित करने का श्रेय उनके सुयोग्य पुत्र पं. विष्णुदत्त शर्मा को है।

(२०) विधि मार्ग प्रपा : रचयिता श्री जिनप्रभसूरि; अनुवादिका- संशोधिकाः साध्वी सौम्यगुणाश्री जी; प्र. श्री महावीर स्वामी जैन देरासर ट्रस्ट, ८, विजयवल्लभ चौक पायधुनी, मुम्बई-४००००३; २००५ ई., पृ. ३०+३६२+१३३; मूल्य रु. २५१/-

श्वेताम्बर आम्नाय के अनुसार गृहस्थ धर्म, मुनि धर्म और पूजा-प्रतिष्ठा आदि से सम्बन्धित प्रस्तुत ग्रन्थ **'विधि मार्ग प्रपा'** का प्रणयन प्राकृत भाषा में १४ वीं शती ईस्वी में दिल्ली के सुलतान मुहम्मद तुग़लक के राज्यकाल में हुए लघु खरतरगच्छ के प्रभावक आचार्य श्री जिनप्रभसूरि ने किया था। श्वेताम्बर आम्नाय के प्रायः सभी गच्छों में मान्यता प्राप्त विधि-विधान सम्बन्धी इस सन्दर्भ ग्रन्थ को हिन्दी पाठकों के लिये सुगम बनाने हेतु इसका अनुवाद और संशोधन-सम्पादन साध्वी सौम्यगुणा जी ने किया है। उन्होंने इस गहन ग्रन्थ का समीक्षात्मक-गवेषणात्मक एवं तुलनात्मक अध्ययन कर पी-एच.डी. उपाधि भी प्राप्त की है जिसके लिये वह बधाई की पात्र हैं।

- रमा कान्त जैन

अभिनन्दन

सौ. विजया गोसावी, मुम्बई, को उनके शोध-प्रबन्ध **"योग और जैन ध्यान पद्धति"** पर जैन विश्व भारती, लाडनूं, ने पी-एच.डी. की उपाधि प्रदान की।

श्री चन्द्रभूषण त्रिपाठी को उनके शोध-प्रबन्ध **"जैन आचार्य तथा महाकवि वादिराज सूरि-व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व एक अध्ययन"** पर लखनऊ विश्वविद्यालय ने पी-एच.डी. की उपाधि प्रदान की। श्री त्रिपाठी ने स्व. डॉ. ज्योति प्रसाद जैन के निर्देशन में यह शोध कार्य प्रारंभ किया था।

श्री रजनीश शुक्ल, उदयपुर, को उनके शोध-प्रबन्ध **'पालि-प्राकृत मुक्तक काव्य का समीक्षात्मक अध्ययन'** पर मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर, ने विद्या वाचस्पति की उपाधि प्रदान की। यह शोध कार्य डॉ. प्रेम सुमन जैन के निर्देशन में किया गया।

श्री कमलेश जैन 'बसंत', बांसवाड़ा, को उनके शोध-प्रबन्ध **'मुनि तरुणसागरः व्यक्तित्व और सृजन'** पर अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवां, ने पी-एच.डी. की उपाधि प्रदान की।

ब्र. सुजाता रोटे, बाहुबली, को उनके शोध-प्रबन्ध **'आचार्यकुन्दकुन्द ग्रन्थोपरि जयसेनप्रणीतवृत्तिग्रन्थानां समीक्षात्मकमध्ययनम्'** पर लाल बहादुर संस्कृत विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, ने विद्यावारिधि (पी-एच.डी.) की उपाधि प्रदान की।

कु. रेखा जैन, दमोह, को उनके शोध-प्रबन्ध **"तत्त्वार्थसूत्र का समीक्षात्मक अनुशीलन'** पर डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, ने पी-एच.डी. की उपााध प्रदान की।

सुश्री मनीषा जैन, इन्दौर, को उनके शोध-प्रबन्ध **"मानव संसाधन विकास में जैन पारमार्थिक संस्थाओं की भूमिका (इन्दौर जिले के विशेष सन्दर्भ में)"** पर देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर, ने पी-एच.डी. की उपाधि प्रदान की।

हस्तिनापुर में अक्तूबर २००५ ई. में जम्बूद्वीप महोसत्व में (१) **जम्बूद्वीप पुरस्कार २००५** से दिगम्बर जैन महासमिति के राष्ट्रीय कार्याध्यक्ष **श्री माणिकचंद जैन पाटनी, इंदौर** को, (२) **कुण्डलपुर पुरस्कार** से **ब्र. विद्युल्लता शहा, सोलापुर,** को; (३) **नंद्यावर्त महल पुरस्कार** से **श्री पवन जैन पापड़ीवाल, औरंगाबाद,** को; (४) **आर्यिका रत्नमती पुरस्कार** से **श्रीमती सुलोचना जैन, दिल्ली** को; तथा

(५) **श्री छोटेलाल जैन स्मृति पुरस्कार** से **श्री उदयभान जैन, जयपुर**, को सम्मानित किया गया।

तीर्थंकर ऋषभदेव जैन विद्वत् महासंघ द्वारा संचालित **चंदारानी जैन स्मृति पुरस्कार, २००४** से **स्व. श्री रामजीत जैन एडवोकेट, ग्वालियर**, को तथा **रूपाबाई स्मृति पुरस्कार, २००४** से **श्री सुरेश जैन मारोरा, शिवपुरी**, को सम्मानित किया गया।

दिगम्बर जैन परिषद आगरा द्वारा **तीर्थंकर ऋषभदेव पुरस्कार २००३ डॉ. अभय प्रकाश जैन, ग्वालियर**, को तथा **वर्ष २००४ का यह पुरस्कार** मासिक पत्रिका **ऋषभ देशना, इन्दौर**, को प्रदान किया गया।

१४ नवम्बर को भारत सरकार, नई दिल्ली, के मानव संसाधन विकास मंत्रालय के महिला एवं बाल विकास विभाग द्वारा **श्री दिगम्बर जैन आदर्श महिला संस्कृत पी.जी. महाविद्यालय, करौली (राज.)**, को वर्ष २००३-०४ का **राष्ट्रीय बाल कल्याण पुरस्कार** प्रदान किया गया।

१५ नवम्बर को खंभात (गुजरात) में **द्वादशारनयचक्र** ग्रन्थ के सम्पादक ८६ वर्षीय **मुनिश्री जम्बूविजय जी** को बी.एल. इन्स्टीट्यूट ऑफ इण्डोलाजी, नई दिल्ली, द्वारा **हेमचन्द्राचार्य पुरस्कार** से सम्मानित किया गया।

२३ नवम्बर को नई दिल्ली में **आचार्य श्री मानमल जी** को यूनीवर्सल पीस फेडरेशन के चेयरमैन डॉ. एल. एम. सिंघवी ने **शांति दूत अवार्ड** से सम्मानित किया।

'जैन महिलादर्श' की सम्पादिका **डॉ. नीलम जैन** को श्रवणबेलगोल में स्वस्तिश्री चारुकीर्ति भट्टारक जी द्वारा **'गोम्मटेश्वर विद्यापीठ पुरस्कार'** प्रदान किया गया।

६ दिसम्बर को राष्ट्रपति डॉ. ए. पी. जे. अब्दुल कलाम ने **डॉ. भागचन्द्र जैन 'भास्कर'** को पालि-प्राकृत वाङ्मय में निपुणता और शास्त्र में पाण्डित्य के लिये प्रशस्ति-पत्र और पुरस्कार से सम्मानित किया तथा **डॉ. सुदीप जैन** को **महर्षि बादरायण व्यास सम्मान** से पुरस्कृत किया।

१० दिसम्बर को सोनागिर में वर्ष २००५ के **श्रुत संवर्द्धन पुरस्कारों** से निम्नलिखित को सम्मानित किया गया- (१) **प्रो. (डॉ.) लालचन्द जैन, भुवनेश्वर**, को **आचार्य शांतिसागर छाणी स्मृति पुरस्कार** से; (२) **श्री सुरेश जैन 'सरल', जबलपुर**, को **आचार्य सूर्यसागर स्मृति पुरस्कार** से; (३) **डॉ. (श्रीमती) ज्योति जैन**,

खतौली को **आचार्य विमलसागर (भिण्ड) स्मृति पुरस्कार** से; (४) **डॉ. हम्पा नागराजय्या, बैंगलोर**, को **आचार्य सुमतिसागर स्मृति पुरस्कार** से; (५) **प्रो. वृषभप्रसाद जैन, लखनऊ**, का **मुनि वर्द्धमानसागर स्मृति पुरस्कार से**' तथा **सोसायटी फॉर सराक वेलफेयर एण्ड डेवलपमेन्ट, मेरठ**, को **सराक पुरस्कार** से।

कवि एवं चिन्तक **श्री ॐ 'पारदर्शी', उदयपुर**, को १५ दिसम्बर को कल्याण (ठाणे-महाराष्ट्र) में **अध्यात्म ज्योति** की मानद उपाधि से सम्मानित किया गया।

प्रो. डॉ. राजाराम जैन को उनकी दीर्घकालीन साहित्य-सेवाओं के लिये श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, दिल्ली, ने डी.लिट् (वाचस्पति) की मानद उपाधि से सम्मानित किया।

अहिंसा इंटरनेशनल, नई दिल्ली, द्वारा वर्ष २००४ के पुरस्कारों से **डॉ. विद्यावती जैन** को साहित्य के लिये, **श्री महावीर प्रसाद जैन** को शाकाहार के लिये, **डॉ. रतन चन्द्र जैन** को पत्रकारिता के लिये और **श्री बुद्धि प्रकाश जैन** को जीवदया के लिये सम्मानित किया गया। साथ ही **आचार्य साध्वी डॉ. साधना जी** को विशिष्ट आध्यात्मिक, धार्मिक योगदान के लिये सम्मानित किया गया।

श्री सन्दीप कान्त जैन, सह-सम्पादक, **शोधादर्श,** नेशनल इन्श्योरेन्स कम्पनी में एडमिनिस्ट्रेटिव आफिसर पद पर दिसम्बर, २००५ ई. में प्रोन्नत हुए।

श्री ज्ञानचन्द जैन, लखनऊ, को पत्रकारिता में योगदान हेतु १६ जनवरी, २००६ ई. को लखनऊ में उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा पांच लाख रुपये के **यशभारती** पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

गणतन्त्र दिवस पर भारत सरकार द्वारा **सुश्री देवकी जैन** को **पद्मभूषण** से सम्मानित किया गया।

उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान ने अपने वर्ष २००४ के पुरस्कारों में लखनऊ के **डॉ. विजय कुमार जैन** (राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान में रीडर एवं सम्पादक, श्रुत संवर्धिनी पत्रिका) को पुरस्कृत करने की घोषणा की।

इन्दौर से प्रकाशित मासिक पत्र ऋषभदेशना की सम्पादिका **श्रीमती सुमन जैन** को **'महिला रत्न शिरोमणि'** की उपाधि से अलंकृत किया गया।

श्री नरेशचन्द गोधा, ग्राम लोहारी, जिला धार, को **'श्रेष्ठ श्रावक'** की उपाधि से अलंकृत किया गया।

श्री क्षेत्र श्रवणबेलगोल मठ के लिये पन्ने से निर्मित बाहुबलि स्वामी की मूर्ति भेंट करने हेतु वहाँ के भट्टारक श्री चारूकीर्ति जी ने **जयपुर के जौहरी श्री नानगराम जैन** को आधुनिक चामुण्डराय बताते हुए उन्हें 'श्रावकरत्न' के विरुद से सम्मानित किया।

उपर्युक्त सभी सम्मानित महानुभावों का उनकी उपलब्धियों के लिये शोधादर्श परिवार हार्दिक अभिनन्दन करता है और उन्हें अपनी शुभकामना अर्पित करता है।

शोक संवेदन

२१ जनवरी, २००६ ई. को ग्वालियर में जैन जगत के जाने माने विद्वान लेखक **डॉ. अभय प्रकाश जैन** का हार्ट अटैक से आकस्मिक निधन हो गया। वह **शोधादर्श** के लेखक एवं प्रशंसक रहे।

२१ जनवरी को ही कारकल जाते हुए सड़क दुर्घटना में धर्मस्थल के धर्माधिकारी डॉ. वीरेन्द्र हेगड़े की ७८ वर्षीया धर्मनिष्ठ **मातुश्री रत्नम्मा हेगड़** की आकस्मिक मृत्यु हो गई।

६ मार्च को जयपुर में प्रख्यात चिन्तक, पत्रकार, स्वतन्त्रता सेनानी एवं सर्वोदयी नेता ९८ वर्षीय **श्री सिद्धराज ढड्ढ़ा** का निधन हो गया।

शोधादर्श परिवार उपर्युक्त दिवंगत महानुभावों को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता है, उनकी आत्मा की चिर शान्ति और सद्गति के लिये जिनेन्द्रदेव से प्रार्थना करता है तथा शोक सन्तप्त उनके स्वजनों-परिजनों के प्रति हार्दिक संवेदना व्यक्त करता है।

भूल सुधार

शोधादर्श-५७ (नवम्बर २००५) अंक में पृष्ठ १०१ पर भूल से हाईकोर्ट जस्टिस एवं पूर्व राज्यसभा सदस्य श्री गुमानमल लोढ़ा के निधन का समाचार प्रकाशित हो गया था। **'ओसवाल महिमा'** (मासिक) के प्रधान सम्पादक बन्धुवर डागा जी ने हमारा ध्यान आकर्षिक करते हुए सूचित किया है कि श्री लोढ़ा मुम्बई में अपने पुत्र के पास रह रहे हैं।

आभार

श्री किशोर जैन, ६५-ए, रशीद मार्केट, दिल्ली-११००५१, ने अपने यहां भक्तामर विधान के उपलक्ष में **शोधादर्श** को रु. ४००/- भेंट किये।

श्रीमती बीना जिन्दल, अजिताश्रम, गणेशगंज, लखनऊ, ने अपने पति स्व. डॉ. इन्दुभूषण जिन्दल की प्रथम पुण्यतिथि पर उनकी पुण्य स्मृति में **शोधादर्श** को रु. १५१/- भेंट किये।

श्री हुकमचंद जैन, ८६ ठठेरवाड़ा, मेरठ शहर, ने अपने मामाजी श्रद्धेय अजित प्रसाद जैन की पुण्य स्मृति में **शोधादर्श** को रु. १००/- भेंट किये।

डॉ. ओम प्रकाश अग्रवाल, महानिदेशक, भारतीय संरक्षण संस्थान परिषद, लखनऊ, ने **शोध पुस्तकालय** के लिये अपनी २१ पुस्तकों का एक बहुमूल्य सेट भेंट किया।

डॉ. शशि कांत-रमा कान्त जैन, ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ, ने अपने पूज्य पिताजी स्व. डॉ. ज्योति प्रसाद जैन के ६५वें जन्म दिवस पर उनकी पुण्यस्मृति में **शोधादर्श** को रु. ५१/- भेंट किये।

श्री आलोक जिन्दल-श्रीमती सुधा जिन्दल, अजिताश्रम, गणेशगंज, लखनऊ, ने **शोध पुस्तकालय** को अपने पुस्तक संग्रह से **षट्खंडागम** के ६ भाग तथा **अकलंक ग्रंथत्रयम्** कुल १० पुस्तकें भेंट की।

अजमेर से प्रकाशित मासिक पत्रिका **'स्वतन्त्र जैन चिन्तन'** ने अपने जनवरी २००६ के अंक में पृष्ठ २५-२८ पर शोधादर्श-५३ से सम्पादकीय **'समाज सुधार में धर्मगुरुओं की महत्वपूर्ण भूमिका हो'** को उद्धृत किया है।

डॉ. एस. के. जैन, बर्लिंगटन चौराहा, विधान सभा मार्ग, लखनऊ, ने **शोध पुस्तकालय** को स्व प्रकाशित को **'सुभाष स्मृति पूजन-पाठ'** की प्रति भेंट की।

पाठकों के पत्र

शोधादर्श-५६ में श्री रमा कान्त जैन का 'महात्मा भगवानदीन' से संबंधित 'गुरु गुण-कीर्तन' अत्यन्त भाववाही तथा नयी जानकारी, जो हमें नहीं थी, देने वाला लगा। ऐसे गुरुगुण-कीर्तन से पहले भी मैं आपके द्वारा बोधित होता रहा हूँ। उस समय कैसे कैसे त्यागी जीवन जीकर विद्या के प्रसार में तथा ब्रह्मचर्याश्रम के संचालन में निष्पक्ष योगदान देने वाले थे। आज तो त्यागी वर्ग तक स्वार्थपोषण में मस्त है।

श्री अजित प्रसाद जी का वियोग मन को कचोटता है। उनका मृत्यु पूर्व लिखा हुआ संपादकीय 'चमत्कार की जय जयकार' वास्तविकता का दर्शन कराने वाला है। आज पुराने मंदिरों से द्वेष सा हो गया है।

सम्राट खारवेल संबंधी डॉ. शशि कान्त जी का शोधपूर्ण लेख तथा उसमें शिलालेख का हिन्दी अनुवाद मन को भाने वाला तथा तथ्यपूर्ण है।

'समाचार विमर्श' में मुम्बई में शाकाहार का बोलबाला और कुतिया ने बचाया इंसान के बच्चे को बहुत ही उत्साहवर्धक है। तीसरे समाचार ने तो रिकार्ड बनाने का जैनों का मोह ही उजागर किया।

- श्री मनोहर मारवडकर, नागपुर

श्री अजित प्रसाद जैन सम्पादक-कला के प्रामाणिक और विश्वसनीय स्तम्भ पुरुष थे। उनके कालगत हो जाने से पत्रकारिता जगत में अपूरणीय रिक्तता आ गई है। **शोधादर्श** को एक आदर्श शोध-पत्रिका के रूप में प्रतिष्ठित करना उनके वाङ्मय तप का अनुकरणीय उदाहरण है। वह अपने कर्ममय जीवन से उस ऊंचाई पर पहुंच गये थे, जहाँ कोई भी सम्मान और पुरस्कार उस महापुरुष के अनुगामी बने रहते हैं।

- डॉ. श्रीरंजन सूरिदेव, पटना

'स्मृति अंक' मिला। सम्पादकीय के स्थान पर 'कीर्तन' देकर, आपने एक अति विशिष्ट विचारक की कीर्ति का ध्वजारोहण किया है। अच्छा शब्द चित्र है, अच्छे आदमी के सम्मान में। अन्य अनेक लेख, प्रसंग और संदर्भों से उनके जीवन की झांकी की झलक दिखलाई गई है। लेखकों की लेखनियों ने 'स्मृति' के शिलालेख खड़े कर दिये हैं। 'स्मृति अंक' को 'समय-शिलालेख' कर दिया है -आपने।

- श्री सुरेश सरल, जबलपुर

शोधादर्श ५७ श्री अजित प्रसाद जैन स्मृति अंक मेरे लिए प्राप्त होते ही, एक ही बैठक में पूरा पढ़कर छोड़ पाया हूं। प्रस्तुत अंक श्री अजित प्रसाद जी के विराट व्यक्तित्व को मुखर-मुखर कर कह रहा है। उनका जीवन संघर्षों से गुजरता हुआ भी दूसरों के लिए श्रमशील रहा है। आपके सम्पादकीय लेखों से सुशोभित **शोधादर्श** एवं **समन्वयवाणी** पत्रिकाओं ने एक सशक्त क्रांति का कार्य किया है।

शोधादर्श परिवार के आधार स्तम्भ डॉ. शशि कान्त जी एवं रमा कान्त जी को एक सुझाव सुधी पाठकों की ओर से देना चाहता हूँ कि अजित प्रसाद जी के समस्त सम्पादकीय लेखों को पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित किया जावे। उनकी लेखनी को सदैव सम्मान मिलता रहा है और मिलता रहेगा। हमें विश्वास है कि आपका प्रबुद्ध परिवार **शोधादर्श** रूपी वृक्ष को सदैव की भांति अभिसिंचित करता रहेगा।

- ब्र. संदीप सरल, बीना

शोधादर्श का श्री अजित प्रसाद जैन स्मृति अंक मिला। श्री अजित प्रसाद जैन न **'शोधादर्श'** को एक उच्च स्तरीय पत्रिका बनाने में बड़ा योगदान दिया। सरकारी सेवा में रहते हुए अच्छे आलेख प्रस्तुत किए। वस्तुतः सुविख्यात मनीषी **इतिहासकार** डॉ. ज्योतिप्रसाद जैन की प्रतिभा-रश्मियां ही आपके परिवार से निकलकर समाज को आलोक प्रदान कर रही हैं। इस संग्रहणीय अंक द्वारा आपनें श्री अजित प्रसाद जी को अच्छी श्रद्धांजलि अर्पित की है।

- डॉ. निजामउद्दीन, श्रीनगर (कश्मीर)

शोधादर्श-५७ श्री अजित प्रसाद जैन स्मृति अंक से उनके व्यक्तित्व और कृतित्व के विषय में समग्र जानकारी मिली है। उनके व्यक्तित्व/कृतित्व से अभिभूत हूँ।

- श्री ब्रह्मराज मित्तल, हांसी (हिसार/हरियाणा)

स्वर्गीय श्री अजित प्रसाद जैन ने अपने धर्म एवं समाज के प्रति जो कृतज्ञता की भावाभिव्यक्ति की वह जैन धर्म के सभी अनुयायियों के लिए एक आदर्श है जिसका अनुकरण किया जाना अपेक्षित है।

- डॉ. रत्न लाल जैन, हांसी

शोधादर्श-५७, श्री अजित प्रसाद जैन स्मृति अंक, नवम्बर ०५ प्राप्त हुआ। एक सौ चार पेज का स्मृति अंक विशाल अभिनंदन ग्रंथ की तुलना में सारभूत एवं उपादेय सिद्ध हुआ है। सम्मानीय श्री अजित प्रसाद जी का सम्पूर्ण व्यक्तित्व एवं कृतित्व बिना किसी महिमा मंडन के उनके स्वभाव के अनुरूप प्रकाशित हुआ है। एक प्रशासनिक

अधिकारी किस प्रकार अकर्ता/अभोक्ता भावना के, निष्पृह रूप से, धर्म संस्कृति के संरक्षण में अपने साधनों का महत्तम उपयोग किस प्रकार कर सकता है, उसकी बेजोड़ मिसाल आपके इस स्मृति ग्रंथ से स्वतः सिद्ध होती है। अर्थ और यश की कामना में नैतिकता, धर्म, धर्मायतनों और विचारों को गिरगिट जैसे रंग बदलने वाले मायावियों को यह स्मृति अंक अवश्य कड़वा लगेगा, किन्तु तटस्थ एवं भद्र परिणामी व्यक्ति उससे अवश्य निरंतर प्रेरणा लेते रहेंगे।

श्री अजित प्रसाद जी के कुछ सम्पादकीय कालजयी हैं, उनका प्रथक् से प्रकाशन हो सके तो यह बड़ी उपलब्धि होगी। कृपया विचार करें। आपकी श्रम साधना सार्थक हुई। आप सबको नमन। सम्माननीय श्री अजित प्रसाद जी के कृतित्व को भी नमन। वे सदा जयवंत बने रहें, यही भावना है।

- डॉ. राजेन्द्र कुमार बंसल, अमलाई

शोधादर्श का अजित प्रसाद जैन स्मृति अंक पढ़कर अजित प्रसाद जैन के व्यक्तित्व की बहुत सी जानकारी, जिससे मैं अनभिज्ञ था, प्राप्त हुई। सम्पूर्ण अंक पारिवारिक तथा स्वजनों की संवेदनाओं से भरा है। रुग्णावस्था की लम्बी त्रासदी झेलते हुये भी वे अन्तिम समय तक जीवंत साहसी और कर्मठ बने रहे और जीवन के ८७ बसन्त देखे यह बहुत बड़ी बात है। आपने उनके जीवन के अनेक चित्रों को इस स्मृति अंक में प्रकाशित कर ठीक ही किया है। जैन साहब अपने परिवार, इष्ट-मित्रों तथा जैन समाज से इतनी घनिष्टता से जुड़े रहे कि घर-परिवार के लोग आज उन्हें आदर भाव से देखते हैं। बड़ा मार्मिक और प्रेरणाप्रद है यह अंक। प्रकाशन हेतु आपको साधुवाद !

- डॉ. परमानन्द जड़िया, लखनऊ

इस माह का **शोधादर्श** अंक स्व. श्री अजित प्रसाद जैन स्मृति अंक के रूप में निकाला गया है। यह बहुत अच्छा प्रयास है। उस महान विद्वान आत्मा को श्रद्धांजलि देने व उनके जीवन से सम्बंधित अनेक घटनाओं का उल्लेख करने व जानकारी देने का उत्तम से उत्तम मार्ग है। मेरी जानकारी में नहीं था। मैं अपने को उसी श्रृंखला में जोड़कर भाग्यशाली समझता। अब इस पत्र के माध्यम से मैं अपनी श्रद्धांजलि व विनयांजलि उस महान आत्मा के प्रति समर्पित करता हूँ। पत्रकारिता के क्षेत्र में उनका अपना एक स्थान रहा है। एक पहचान रही है। उनके दर्शन करने का अवसर तो प्राप्त नहीं हुआ, परन्तु ऐसे महान विद्वान् के प्रति मैं भी नतमस्तक हूँ।

- श्री देवेन्द्र कुमार जैन, दिल्ली

I am deeply shocked and grieved to learn that Bhai Saheb Ajit Prasad Ji Passed away on 25th June. He was a very fine man retiring and unostantatious, hiding under his kind exterior a very sharp intellect and deep learning. He was a fearless writer, who spoke his mind without fear or favour without giving offence to anyone. Towards me he was very affectionate and solicitious. I deeply mourn his passing away and convey my heartfelt condolances to all family members.

- Sri Shanti Prakash jain, Meerut

शोधादर्श के श्री अजितप्रसाद जैन स्मृति अंक में प्रकाशित रचनाएं कीर्ति शेष श्री अजित प्रसाद जैन के विराट व्यक्तित्व को वाणी प्रदान करने में सर्वथा समर्थ हैं तथा यह भी सिद्ध करने के लिये पर्याप्त हैं कि उनके महाप्रयाण से उत्पन्न हुई रिक्तता की पूर्ति सहज ही संभव नहीं। निश्चय ही वे जीवन की उदात्तता के संवाहक थे। इस अंक के माध्यम से उनकी स्मृति को स्थायित्व प्रदान करने का सार्थक उपक्रम किया गया है।

- डॉ. गणेशदत्त सारस्वत, सम्पादक 'मानस चन्दन', सीतापुर

श्री अजित प्रसाद जैन स्मृति अंक में यद्यपि पृष्ठ सीमित हैं तथापि सामग्री ठोस-सार्थक है। कुल मिलाकर अंक शानदार और संग्रहणीय हो गया है।

- श्री मोतीलाल जैन 'विजय', कटनी

श्री अजित प्रसाद जैन स्मृति अंक गजब का बना है।

- श्री महावीर प्रसाद जैन सर्राफ, दिल्ली

शोधादर्श का इतने आकर्षक, सुन्दर एवं पठनीय सामग्री के साथ प्रकाशित श्री अजित प्रसाद स्मृति अंक पढ़कर बहुत आनन्द हुआ। श्री अजित प्रसाद जी के बारे में कोई प्रसंग छोड़ा ही नहीं गया। इस अंक के माध्यम से उनकी सारी स्मृतियां आँखों के सम्मुख आ गई। आपने स्मृति अंक प्रकाशित करके उनको सच्ची श्रद्धांजलि अर्पित की है।

- श्री राजेन्द्र कुमार जैन
कार्यकारी अध्यक्ष- उत्तर भारतीय जैन मिलन, मेरठ

श्री अजित प्रसाद जी के स्वर्गवास से वस्तुतः समाज एवं देश के लिए एक बड़ा कीर्तिस्तम्भ ढह गया है। यद्यपि मैं उनके संपर्क में नहीं आया था, फिर भी उनके द्वारा सम्पादित **शोधादर्श** तथा अन्य समाचारों से ज्ञात उनकी दीर्घ दूरदृष्टि, जागृति हेतु प्रेरणास्पद सम्पादकीय एवं समसामायिक लेख संचयन अनुपम थे। शासकीय सचिवालयीन सेवाएं देते हुए वे अनुभव की परिपक्वता भी पार कर चुके थे, और संसार की घटनाओं को एक साक्षी बनकर देखते रहे थे और उनमें कभी लिप्त नहीं हुए थे। उनके निधन पर हमारी सभी, समाज की, परिजनों तथा मित्रों की हार्दिक संवेदनाएं आपके साथ हैं।

- प्रो. एल. सी. जैन, जबलपुर

शोधादर्श का श्री अजित प्रसाद जैन स्मृति अंक अच्छा निकला है। साधुवाद!।

- जस्टिस एम. एल. जैन, जयपुर

'शोधादर्श' है मिलि पत्रिका,
प्रति चतुर्मास में छप जाती।
इनको हमको तुमको भिजती,
हर बात शोध कर कह जाती।।१।।

ब्लेक-व्हाइट के रंग में उभरे,
ब्लाक वर्ड अरु एक्शन सारे।
मिले समय से सभी जगह पर,
रमाकांत संपादक न्यारे।।२।।

अजित प्रसाद जी पूर्व संपादक,
लेखनी-कथनी खूब संवारे।
एक जनवरी सहस्र-द्वय छह,
जन्म-दिवस अठ नौ रविवारे।।३।।

चित्र अनावरण स्मृति जागे,
कार्य-क्षेत्र उनके सम विकसे।
मेरे मित्र चचा अजित जी,
सदियों तक आदर्श हमारे।।४।।

अग्रज उनके ज्योति प्रसाद जी,
सह-संपादक इनके सान्निध्य।
रहा 'प्रेम' महावीर जयंती,
आम-सभा लखनऊ के मध्य।।५।।

राय-मशविरा आदेश करें वे,
मैं मानूँ रह उनके पास।
जैन-गज़ट के संपादक वे,
उनके अन्डर में रह खास।।६।।

धन्यवाद है उनको मेरा,
आभार मानता सहसंयोजन।
लिखी आज मैं स्मृति-कामना,
मिले प्रेरणा अरु अनुमोदन।।७।।

- पं. प्रेमचन्द जैन 'दिवाकर,
डीमापुर (नागालैंड)

शोधादर्श पत्रिका का आदरणीय स्व. श्री अजित प्रसाद जी जैन का स्मृति अंक प्रकाशित किये जाने पर साधुवाद ! आदरणीय स्व. श्री अजित प्रसाद जी जैन ने जो जैन समाज की सेवा की है वह कभी भुलाई नहीं जा सकती, वह समाज के निर्भीक, निष्पक्ष विद्वान थे।

- श्री डालचंद्र जैन, सागर

शोधादर्श अंक ये नवम्बर का प्राप्त कर
मन मध्य मोद मयी नदी उफनायी है।
अजित प्रसाद जैन-सुस्मृति अंक यह,
ज्ञान युक्त जानकारी जिसमें समाई है।।
रमाकान्त, शशिकान्त, मानस व सारस्वत,
सब ने ही लेखों मध्य, करुणा दिखाई है।।
चित्रावली याद है पुरातन सजीव किये।
सम्पादक आपको 'अबोध' की बधाई है।।

- श्री दयानन्द जड़िया 'अबोध', लखनऊ

शोधादर्श का श्री अजित प्रसाद जैन स्मृति अंक प्राप्त होते ही उसे आद्योपान्त पढ़ जाना मेरे लिये स्वाभाविक था, क्योंकि थोड़े समय के लिये ही सही मैं उनका स्नेहिल बन सका और यदाकदा उनके घर जाकर उनके दर्शन कर अपना अहोभाग्य मानता रहा।

मेरे मन में भी उनकी स्मृति में **'हिन्दी उत्थान'** का एक अंक निकालने का भाव उठा और मैंने बहुत दौड़ भागकर सामग्री भी जुटाई पर धनाभाव में वह अंक अप्रकाशित ही रह गया।

इस अभाव की पूर्ण पूर्ति के रूप में **शोधादर्श** के नवम्बर २००५ के अंक को पढ़कर मेरा हृदय प्रसन्नता से खिल उठा। डॉ. शशि कांत, रमा कांत के स्नेहिल भावों की अभिव्यक्ति स्व. अजित प्रसाद जैन के बहुमुखी जीवन चरित्र का सम्पूर्ण आकार खींचने में सर्वथा समर्थ दिखाई देती है। दूसरी ओर उनके दिवंगत होने के समाचार को सुनकर जिन जैन विद्वानों ने अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की है वह सभी चिल्ला-चिल्ला कर कह रहे हैं कि स्व. अजित प्रसाद जैन केवल जैन समुदाय के ही नहीं वरन पूरे साहित्य समाज के पूज्य एवं वरेण्य थे।

अस्तु उस अंक के सफल सम्पादन के लिये आपको कोटि-कोटि बधाई भेज रहा हूं। आप बाजी मार गये, उसकी मुझे प्रसन्नता है। और **शोधादर्श** दोनों भाईयों की कर्मठता एवं लगन का पर्याय बन कर आलोकित होता रहे, यही ईश्वर से प्रार्थना है।

- पं. विष्णुदर्त्त शर्मा, सम्पादक, हिन्दी उत्थान, लखनऊ

आदरणीय विद्वत्वरेण्य स्व. अजित प्रसाद जी को समर्पित **शोधादर्श**-५७ के पूरे अंक को पढ़ गया हूं। विभिन्न लेखकों द्वारा अजित प्रसाद जी के बारे में **शोधादर्श** में समग्र रूप में पढ़ा तो अजित प्रसाद जी द्वारा समाज के प्रति किये गये अवदान ज्ञात हुये। निश्चित ही अजित प्रसाद जी का जाना अपूरणीय क्षति है। उन जैसे निर्भीक निष्पक्ष और निडर पत्रकार जो अपने अंतिम पड़ाव तक समाजसेवा करते रहें, अब मिलना कठिन है। उम्र के अंतिम पड़ाव में जिस तन्मयता के साथ अपनी लेखनी को जवान रखा वह काबिले-तारीफ है। आपके विभिन्न पत्र/पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों की लम्बी सूची देखकर लगा कि आपने समाज के चतुर्दिक् कलम चलाई है। चित्रावली देखकर भी अजित प्रसाद जी के विशिष्ट व्यक्तित्व को आंका जा सकता है। आपकी सेवाओं को जैन समाज में लम्बे समय तक याद किया जाता रहेगा।

- पं. सुनील जैन 'संचय'
जैन दर्शनाचार्य, नरवां, जिला-सागर

शोध के स्वच्छ आदर्श सर्वांग सुन्दर **'शोधादर्श'** के लिये भूरिश : बधाई !

-डॉ. नीलकंठ पुरुषोत्तम जोशी,
देहरादून

सत्त्वेषु मैत्रीं, गुणिषु प्रमोदं, क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वम्।
माध्यस्थभाव विपरीतवृत्तौ, सदा ममात्मा विदधातु देव।।

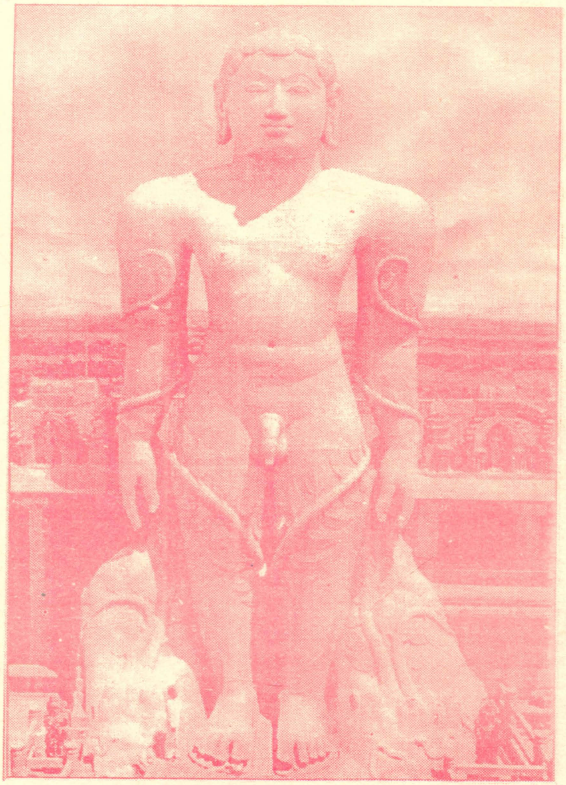

गोम्मटेश्वर भ० बाहुबली, श्रवणबेलगोल

आवश्यक सूचना

इस वर्ष का वार्षिक शुल्क ५० रु. (पचास रुपये), यदि अभी नहीं भेजा हो, तो कृपया मनीआर्डर द्वारा 'महामंत्री, तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ. प्र., पारस सदन, आर्य नगर, लखनऊ–२२६ ००४', को शीघ्र ही भेजने का अनुग्रह करें। चेक लखनऊ के ही स्वीकार होंगे। एक प्रति का मूल्य २० रु. (बीस रुपये) है। मनीआर्डर भेजने पर एक पोस्ट कार्ड भी अपने पूरे नाम पते के साथ उसकी सूचना अवश्य भेजें।

शोधादर्श चातुर्मासिक पत्रिका है और सामान्यतया इसके अंक मार्च, जुलाई व नवम्बर में प्रकाशित होते हैं।

शोधादर्श में प्रकाशनार्थ शोधपरक एवं अप्रकाशित लेख आमंत्रित हैं। लेख कागज के एक ओर सुवाच्य अक्षरों में लिखित अथवा टंकित होना चाहिये और उसमें यथावश्यक सन्दर्भ/स्रोत सूचित किये जाने चाहिए। यथासंभव लेख ३–४ टंकित पृष्ठ से अधिक न हो। *लेख की एक प्रति अपने पास अवश्य रख लें। अप्रकाशित लेख–रचना लौटाना कठिन होगा।*

शोधादर्श में समीक्षार्थ पुस्तकों तथा पत्र–पत्रिकाओं की *दो प्रतियां* भेजी जायें।

शोधादर्श में प्रकाशित लेखों को उद्धरित किये जाने में आपत्ति नहीं है, परन्तु *शोधादर्श* का श्रेय स्वीकार किया जाना और पूर्ण सन्दर्भ दिया जाना अपेक्षित है।

प्रकाशनार्थ लेख और समीक्षार्थ पुस्तक/पत्रिका सम्पादक को पारस सदन, आर्य नगर, लखनऊ–२२६ ००४, के पते पर भेजे जायें।

लेखक के विचारों से सम्पादक मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है। लेखों में दिये गये तथ्यों और सन्दर्भों की प्रामाणिकता के संबंध में लेखक स्वयं उत्तरदायी है।

सभी विवाद लखनऊ में स्थित सक्षम न्यायालयों/न्यायाधिकरणों के क्षेत्राधिकार के अधीन होंगे।

सुधी पाठक कृपया अपनी सम्मति और सुझावों से अवगत करावें ताकि पत्रिका के स्तर को बनाये रखने और उन्नत करने में हमें प्रोत्साहन तथा मार्गदर्शन प्राप्त होता रहे। कृपया पत्रिका पहुंचने की सूचना भी देवें।

नोट– ऊपर जहाँ–जहाँ 'पारस सदन, आर्यनगर' अंकित है उसके स्थान पर 'ज्योति निकुंज, चार बाग' पढ़ा जाय।

– प्रधान सम्पादक